अंक १४७
जुलाई-सितंबर २०११

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

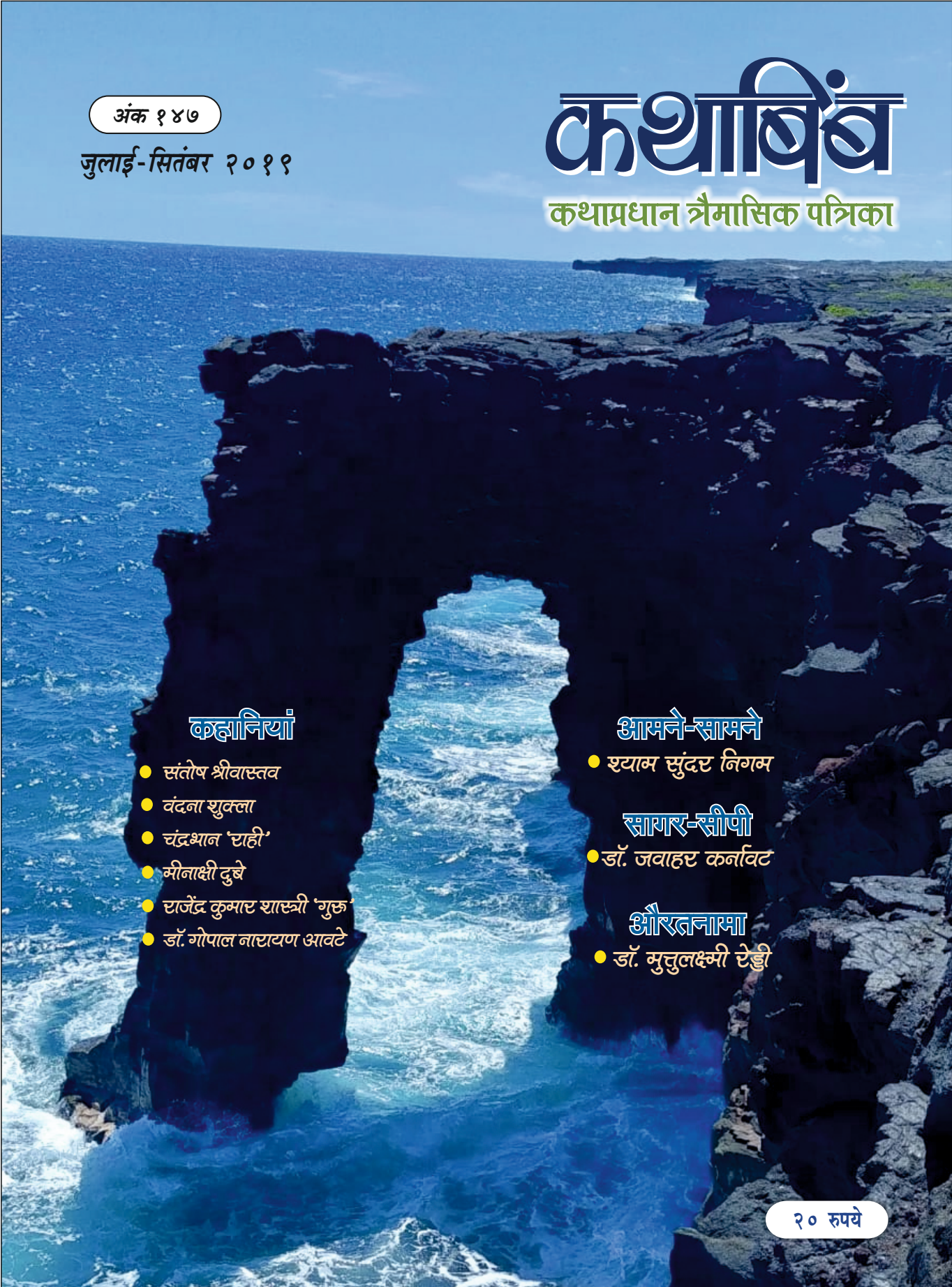

कहानियां

- संतोष श्रीवास्तव
- वंदना शुक्ला
- चंद्रभान 'राही'
- मीनाक्षी दुबे
- राजेंद्र कुमार शास्त्री 'गुरु'
- डॉ. गोपाल नारायण आवटे

आमने-सामने

- श्याम सुंदर निगम

सागर-सीपी

- डॉ. जवाहर कर्नावट

औरतनामा

- डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी

२० रुपये

Ashok Patel
Mobile : 98204 00257

MAHARASHTRA
STATIONERS

Dealers in:

SCHOOL, COLLEGE & OFFICE STATIONERY
BROCHURES, MAGAZINE, BOOKS, ID-CARDS
SCREEN & OFFSET PRINTING, DIGITAL
PRINTING, PLASTIC FILES & FOLDERS,
ACCOUNT BOOKS COMPUTER STATIONERY &
NEW YEAR DIARY ETC.

69, PRINCESS STREET, MUMBAI 400 002.
• **TEL.:** 2208 7821 / 2207 2001/2/3 **FAX:** 022-2208 7495
• **E-MAIL :** mlrnmstn@vsnl.net / zebrams@yahoo.com

जुलाई-सितंबर २०१९
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044
● **कैलीफ़ोर्निया संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। तुम हो तो – संतोष श्रीवास्तव
।। १३।। बेड नं. ९ – वंदना शुक्ला
।। १९।। फ़ैसला – चंद्रभान "राही"
।। २३।। फ़ेयर ड्राफ़्ट – मीनाक्षी दुबे
।। २९।। गुडमॉर्निंग सर – राजेंद्र कुमार शास्त्री "गुरू"
।। ३६।। ओलों की बरसात – डॉ. गोपाल नारायण आवटे

लघुकथाएं

।। २२।। शरीफ़ लुटेरे / योगेंद्र शर्मा
।। २८।। सबूत / किशन लाल शर्मा
।। ३८।। ख़ून तो सिर्फ़ उसका ही लाल था / राजकमल सक्सेना

कविताएं / ग़ज़लें

।। २७।। घाम की चिलकन में (कविता) / अनिता रश्मि
।। २८।। मुक्तक / विश्वंभर दयाल तिवारी
।। ३५।। ग़ज़ल / कुमार नयन
।। ४३।। कुछ शब्द अनकहे (कविता) /अनुभव शर्मा

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ४०।। "आमने-सामने" / श्याम सुंदर निगम
।। ४४।। "सागर-सीपी" / डॉ. जवाहर कर्नावट
।। ४७।। "औरतनामा" : मुत्तुलक्ष्मी / डॉ. राजम पिल्लै
।। ५०।। पुस्तक-समीक्षा

●"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : होलेय समुद्री आर्क (हवाई), २९अगस्त २०१९.
फ़ोटो : मंजुश्री

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" के इस जुलाई-सितंबर '१९ अंक के प्रकाशन में थोड़ा विलंब होगा इसका अंदाज़ काफ़ी पहले से था. पिछले वर्ष की तरह जुलाई मध्य से लेकर सितंबर के तीसरे सप्ताह तक, लगभग दो माह से कुछ अधिक, हम विदेश प्रवास पर थे. किंतु वैश्विक कनेक्टीविटी के कारण रचनाकारों और प्रेस से लगातार संपर्क बनाये रख पाना मुश्किल नहीं रहा. पत्रिका के काम में कोई व्यवधान नहीं आया. ई-मेल और वाट्सअप के प्रयोग से देखा जाये तो "दूरियां" अब समाप्तप्राय हो गयी हैं. हां, आपको यह ध्यान रखना पड़ता है कि आप किस "टाइम ज़ोन" में हैं. हम अमेरिका में कैलीफ़ोर्निया में थे. यदि भारत में सुबह के सात बजते हैं तो वहां एक दिन पहले की शाम के साढ़े छह बज रहे होते हैं. वर्तमान में आज "वाई-फ़ाई" भी आसानी से सुलभ हो गया है. होटलों में, एयरपोर्ट पर यहां तक कि कुछ एयरलाइन्स के अपने सैटेलाइट भी हैं. अब आप वायुयान में अपने मोबाइल और लैपटॉप का उपयोग कर सकते हैं. अगस्त के अंत में इस बार चार दिनों के लिए हवाई-द्वीप घूमने का कार्यक्रम भी बना और फिर विदेश-यात्रा के अंतिम पड़ाव में पांच दिन सिंगापुर घूमते हुए लौटे. हवाई-द्वीप यात्रा की कुछ झलकियां अंक के पृष्ठों पर प्रस्तुत हैं.

पिछले अंक में डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी की कहानी *"सुंदर वन की अनूठी कथा"* छपी थी. हमें विशेष खेद है कि इसका अंतिम अंश किसी तरह से छपने से रह गया. यह अंश पृष्ठ-१८ पर "गतांक से आगे" में प्रस्तुत है.

●

पिछले अंक की तरह इस बार भी पेश हैं छह कहानियां : अंक की पहली कहानी *"तुम हो तो"* की कथाकारा संतोष श्रीवास्तव "कथाबिंब" के पाठकों के लिए जाना-पहचाना नाम है. मीरा और करन सहपाठी थे. पढ़ाई के अलावा मीरा नृत्य, गायन व कला में भी माहिर थी. एक आर्ट गैलरी में मीरा की पहचान कपिल से हो जाती है. दोनों ने कभी इजहार नहीं किया परंतु वे एक-दूसरे को चाहने लगते हैं. लेकिन करन मीरा के पीछे ही पड़ा रहता है. एक शाम प्रयोगशाला में करन चुपके से आकर मीरा से बलात्कार की कोशिश करता है. मीरा गिरकर बेहोश हो जाती है और कोमा में चली जाती है. करन को महज़ सात साल की क़ैद होती है. किंतु मीरा की स्थिति में बरसों कोई सुधार नहीं होता. अगली कहानी *"बेड नं.९"* (वंदना शुक्ला) के एस. के. अस्पताल की आई. सी. यू. में लेटे हैं. डॉक्टरों ने उनके जीने की सीमा लगभग तय कर दी है. चौबीस घंटे, चौबीस दिन या ... कैंसर बीमारी ही ऐसी है. आधी सोयी, आधी जगती अवस्था में उन्हें पिछला सब याद आता रहता है. अभी रिटायरमेंट में तीन महीने बाक़ी हैं. वे बहुत कुछ करना चाहते थे. पर अब ज़िंदगी फिसल रही है. तीसरी कहानी *"फ़ैसला"* के रचयिता चंद्रभान "राही" मध्य प्रदेश शासन में कार्यरत हैं. कोर्ट-कचहरी की भागदौड़ किसी को रास नहीं आती. राजाराम ने लड़की की शादी के समय महाजन के पास ज़मीन रेहन रखी थी. जब वह छुड़ाने गया तो महाजन ने ज़मीन देने से इंकार कर दिया. गांव का हर कोई महाजन का कर्ज़दार था. कोर्ट में कोई भी गवाही देने के लिए तैयार नहीं. आख़िरी तारीख़ के दिन दूसरे गांव में रहने वाले मित्र रामेश्वर की गवाही से अंततः फ़ैसला राजाराम के पक्ष में हुआ. *"फ़ेयर ड्राफ़्ट"* - मीनाक्षी दुबे की नायिका को अपनी पढ़ाई के सिलसिले में रोज़ अप-डाउन करना पड़ता था. एक दिन वह "इंदौर-भोपाल" वीडियो कोच में चढ़ गयी. बस में बैठने की जगह नहीं थी. एक थ्री-सीटर पर एक लड़की लेटी हुई थी, साथ में उसके पिता बैठे हुए थे. पिता ने नायिका को बैठने की जगह दी. मालूम पड़ा कि लड़की का नाम शीतल है और उसे हफ़्ते में दो बार डायलिसिस के लिए इंदौर जाना पड़ता है. आगे चलकर दोनों में धीरे-धीरे दोस्ती हो गयी. नायिका के कहने पर शीतल एक स्कूल में क्राफ़्ट सिखाने लगती है. उसे जीवन का ध्येय मिल जाता है, लेकिन विधि को कुछ और ही मंजूर था. अगली कहानी *"गुड मॉर्निंग सर"* युवा लेखक राजेंद्र कुमार शास्त्री "गुरू" की है. जनसामान्य में छुआछूत एक बीमारी की तरह है. इसके साथ ही रंग को लेकर टिप्पणी करने से भी लोग बाज नहीं आते. कहानी के "सर" बहुत बुद्धिमान हैं लेकिन काले रंग के कारण विद्यार्थी उनका हमेशा मज़ाक उड़ाते हैं. क्लास में पीछे से ओबामा, ओबामा की आवाज़ें कसते हैं. सर का मन हमेशा कुंठित रहता है. वे प्रिंसिपल से शिकायत करने की सोचते हैं, फिर सोचते हैं कि इससे क्या फायदा होगा. एक शाम कॉलेज़ के बाद जब वे बस पकड़ने के लिए जा रहे होते हैं तो एक सात साल की लड़की उनसे "गुड मॉर्निंग सर" कहती है. लड़की को रोककर वे कहते हैं कि अभी तो शाम हो रही है तुम "गुड मॉर्निंग सर" क्यों कह रही हो, तुम्हें तो "गुड इवनिंग" कहना चाहिए. फिर भी लड़की खिलखिलाती हुई "गुड मॉर्निंग सर" ही कहती है. छोटी-सी लड़की की निष्छलता से सर की सोच में एक बदलाव आता है. अंतिम कहानी *"ओलों की बरसात"* (डॉ. गो. ना. आवटे) के भोलाराम की पत्नी कहती है कि घर में खाने के लिए नहीं है, पटेल से अपनी मजूरी ही ले आये. किंतु पटेल अपनी परेशानियों से घिरे हैं. वे गांव छोड़कर शहर जाने की बात करते हैं. इस बार फ़सल अच्छी हुई लेकिन ओलों की बरसात ने सब कुछ चौपट कर दिया. ओले पिघलने के बाद भोलानाथ ने सारा अनाज सुखा लिया. कुछ अपने पास रख कर शेष पटेल के घर ले आया. पटेल द्रवीभूत हो जाते हैं और गांव छोड़ने का अपना निर्णय बदल देते हैं.

●

अभी मोदी की दूसरी पारी को शुरू हुए छः महीने ही हुए हैं कि एक बार फिर दो राज्यों में चुनाव होने हैं. पूरे देश में जब देखो तब कहीं न कहीं चुनाव होते रहते हैं. देश हित में सभी दलों को मिलकर संविधान में संशोधन की स्वीकृति देनी चाहिए कि लोकसभा के चुनावों के साथ ही विधान सभा के भी चुनाव हों. इससे समय और श्रम का अपव्यय होना बंद होने के अलावा देश के विकास में सत्वरता

आयेगी. नयी सरकार का पहला अधिवेशन बहुत सफल रहा. राज्यसभा में बहुमत न होने के बाद भी कुछ ५० से अधिक बिल पास हुए. तीन तलाक व कश्मीर से अनुच्छेद ३७० का हटाना एक बड़ी सफलता है. इसके लिए सरकार ने काफ़ी तैयारी कर ली थी. पहले अमरनाथ के यात्रियों को बड़े आतंकी हमले की संभावना बताकर बीच से ही वापस बुलाया गया. रातोंरात कई कश्मीरी नेताओं को नज़रबंद किया गया. उधर गृहमंत्री अमित शाह ने संसद के दोनों सदनों से ३७० हटाने का विधेयक पास करा लिया. अनेक विपक्षी दलों ने वोट बैंक में सेंध लगने के डर से सरकार का समर्थन किया. लद्दाख को जम्मू-कश्मीर से एक अलग स्वायत्त राज्य का दर्जा मिला. आज़ादी के ७० सालों के बाद वास्तव में कश्मीर भारत का अभिन्न अंग बना. लद्दाख के साथ पूरे देश में ख़ुशियां मनायी गयीं. लेकिन अचानक दूसरे दिन ही श्रीमती सुषमा स्वराज की तबियत बिगड़ी और देखते-देखते वे स्वर्ग सिधार गयीं. जैसे वे केवल यह दिन देखने के लिए ही जीवित थीं. सारा देश शोक में डूब गया. मोदी जी की पहली पारी में वे विदेश मंत्री से कहीं अधिक थीं. कष्ट में विदेश में रह रहा कोई भी भारतीय यदि गुहार लगाता तो हमेशा उसकी मदद के लिए तत्पर रहतीं. यमन में फंसे हज़ारों लोगों को उन्होंने निकाला. पिछले कुछ महीनों में देश ने कई समर्थ व दिग्गज नेताओं को खो दिया : अनंत कुमार, मनोहर पर्रिकर, अरुण जेटली, शीला दीक्षित, राम जेठमलानी.

पिछले साल मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के साथ ही कर्नाटक में भी विधान सभा चुनाव संपन्न हुए थे. तीन राज्यों में कॉंग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ और भाजपा के हाथ से सत्ता चली गयी. किंतु कर्नाटक में त्रिकोणीय संघर्ष में किसी को बहुमत नहीं मिला. भाजपा की सीटों की संख्या आधी से कुछ ही कम थी और उसके बाद कॉंग्रेस का नंबर था और अंत में जेडीएस. संभावना लग रही थी कि भाजपा और जेडीएस मिलकर सरकार बनायेंगे. लेकिन रातोंरात समीकरण बदल गया और कॉंग्रेस और जेडीएस के गठबंधन की सरकार बन गयी. शपथ ग्रहण के समय सभी विपक्षी दल एक मंच पर हाथ पकड़ कर खड़े थे. सभी समाचार-पत्रों ने यह चित्र छापा था. लोकसभा चुनावों के परिणामों के बाद, *"हम तेरा साथ न छोड़ेंगे"* वाले विपक्षी दल सब तितर-बितर हो गये. काफ़ी उठा-पटक के बाद वर्तमान में, कर्नाटक में भाजपा सत्ता पर काबिज है. फिर कब तख़्ता पलट होगा कुछ कहा नहीं जा सकता. लोकसभा में हार की ज़िम्मेदारी लेते हुए युवराज ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया था. छः महीने से अधिक समय तक *"कौन बनेगा अध्यक्ष?"* पर फ़ैसला नहीं हो पाया. अंततः सीडब्लूसी में श्रीमती सोनिया गांधी का नाम अंतरिम अध्यक्ष के रूप में प्रस्तावित किया गया. क्योंकि गांधी परिवार के सदस्य के अलावा अन्य कोई तो कॉंग्रेस का अध्यक्ष हो ही नहीं सकता.

इस बार, १५ अगस्त को प्रधानमंत्री ने छठी बार लाल किले पर झंडा फहराया. २०१४ में, पहली पारी में मोदी जी ने खुले में शौच की समस्या की बात की थी. बात चाहे छोटी हो किंतु इसके अनेक पहलू हैं. स्वच्छता और स्वास्थ्य के अलावा महिलाओं की सुरक्षा का प्रश्न भी इससे जुड़ा हुआ है. पिछले पांच सालों में इस दिशा में महती काम हुआ है. आप सड़कों पर जाइए, हाई-वेज़ पर जाइए जगह-जगह पर बोर्ड लगे हैं कि कितनी दूरी पर शौचालय है. इस बार के भाषण में प्रधानमंत्री ने एक बार इस्तेमाल होने वाली पतली प्लास्टिक के उपयोग को समाप्त करने का आव्हान दिया है. पूरे देश में कहीं भी कूड़े के ढेर पर प्लास्टिक ही दिखाई देती है. इस गंदगी के लिए हमीं ज़िम्मेदार हैं. लोगों ने प्लास्टिक के स्थान पर कपड़े की थैलियों का उपयोग करना शुरू कर दिया है. घरों में नलों से पानी पहुंचाने और सबको घर मुहैय्या करने की बात भी की जा रही है. यहां कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं कि एक साहित्यिक पत्रिका में इस सबके लिखने-बताने का क्या औचित्य है? तो क्या हम साहित्यकार और बुद्धिजीवियों को आम आदमी से अलग मान लें! इनकी दुनिया जनसामान्य से अलग नहीं हो सकती. आपकी विचारधारा अलग हो सकती है किंतु यदि देश में बदलाव आ रहा है तो उससे आप आंख बंद नहीं कर सकते. देश की बहुत-सी समस्याओं को सदियों से कालीन के नीचे डाला जाता रहा है. अतीत में, सभी राजनीतिक दलों का एक ही उद्देश्य रहा है कि जोड़-तोड़ करके किसी तरह सत्ता में आ जायें, आम आदमी के रहन-सहन के स्तर में कोई अंतर आये या न आये. मोदी जी ने ई-सिगरेट के उपयोग पर पाबंदी लगायी है. लेकिन इससे बड़ा ख़तरा गुटके का प्रयोग है. सिगरेट के पैकटों पर छोटे अक्षरों में वैधानिक चेतावनी छापकर या चित्र बनाकर और सिनेमा घरों में फ़िल्म दिखाकर अधिक कुछ हासिल नहीं होने वाला. टीवी पर दिखाये जाने वाले गुटकों के विज्ञापनों में अमीर और राजसी लोग इसका उपयोग करते हैं. गुटका का उपयोग एक स्टेटस सिंबल होता जा रहा है. अच्छे-अच्छे घरों के हर उम्र के लोग इस व्यसन का शिकार हैं. कैंसर का इलाज करने वाले अस्पतालों की देश में बड़ी संख्या में ज़रूरत है, इसमें कोई शक नहीं. सरकार क्यों इस तरफ़ ध्यान नहीं देती? जड़ पर प्रहार करके ही इस जानलेवा रोग पर अंकुश लगाया जा सकता है.

इस वर्ष सितंबर में, इसरो के भारतीय वैज्ञानिकों ने चंद्रयान-२ रॉकेट को अंतरिक्ष में छोड़ा था. कुछ दिनों बाद उपग्रह सफलतापूर्वक चंद्रमा की कक्षा में प्रस्थापित होगया. अब उसे धीरे-धीरे गति कम करके निर्धारित स्थान पर उतरना था. मीडिया पर हर छोटी-बड़ी जानकारी आ रही थी. रात में लगभग एक बजे इसरो नियंत्रण केंद्र पर प्रधानमंत्री मौजूद थे. साथ में स्कूलों के ६० बच्चे भी उपस्थित थे. सब कुछ ठीक चल रहा था. दो किलोमीटर की दूरी मात्र शेष रह गयी थी. लेकिन एकाएक संपर्क टूट गया. नियंत्रण कक्ष में सब सकते में आ गये. थोड़ी देर में चेहरा लटकाये प्रॉजेक्ट निदेशक श्री सिवन प्रधानमंत्री मोदी को सूचना देने आये. यह दृश्य पूरे विश्व ने देखा कि किस तरह मोदी जी ने उन्हें गले लगाया और पीठ थपथपायी, कहा कि निराश न हों, आज सफल नहीं हुए हैं तो कल सफल होंगे. मैं आपके साथ हूं. वे काफ़ी समय तक वहीं थे, बच्चों से भी बातें कीं. इस प्रकार के व्यवहार से एक सकारात्मक संकेत सारे विश्व में गया.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून '१९ अंक मिला. प्रस्तुत अंक में 'कथा-पंडाल' कहानी का कथ्य तो सही है, तथापि कहानी को अनावश्यक विस्तार दिया गया है. इस तरह पाठक पर प्रभाव कुछ बिखर जाता है. कीर्ति दीक्षित की कहानी 'केर बेर की दोस्ती' ज़रा नये शिल्प और शैली में है, मन को प्रभावित करती है.

'सुंदरवन की अनूठी कथा' (डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी) अत्यधिक पसंद आयी. कहानी में आम पाठक के लिए जानकारी का भंडार भी प्रचुर मात्रा में है, रोचकता और प्रवाह भी है. डॉ. राय चौधरी भी बंगला के 'बनफूल' की भांति डॉक्टरी पेशे में सुंदर लेखन में समर्थ हैं. बधाई.

दिलीप दर्श की 'फिर वही सड़क' रोचक है, कथा प्रवाह भी अच्छा बन पड़ा है. अन्य कथाएं भी अच्छी हैं.

'कथाबिंब' में मैं सबसे पहले संपादकीय पढ़ता हूं. प्रायः लोग राजीव गांधी को ४०० सीटें मिलने वाली बात भी कहते हैं, वे भूल जाते हैं कि इंदिरा गांधी की हत्या के तत्काल बाद के वे सहानुभूति वोट थे. कांग्रेस दल में केवल पुराना होने, देश के प्रथम प्रमुख दल होने के सिवाय और कुछ तो नहीं है. उसका इतिहास भ्रष्टाचार से भरा रहा है. अब देश सही राह पर चल रहा है.

चंद्रमोहन प्रधान,

ज्ञान-कला केंद्र, आमगोला, मुजफ्फरपुर-८४२००२. मो. ८७५७०९०७५१. (मात्र एसएमएस)

▶▶ 'मंजुश्री व अरविंद जी, आदाब!

'फिर नज़र में फूल महके, दिल में फिर शमाएं जलीं,
फिर तसव्वुर ने लिया, उस बज़्म में जाने का नाम.'

'कथाबिंब' का अप्रैल-जून '१९ अंक नज़र-नवाज़ हुआ. आपने मुझे अब तक याद रखा, यह आपकी मुहब्बत और दिल नवाज़ी है. पत्रिका के चालीस वर्ष पूरे होने पर मैं आपको दिली मुबारकबाद पेश करता हूं. 'कथाबिंब' की लोकप्रियता के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई. हक़ीकत यह है कि अरविंद जी ने इसे अपने ख़ून-जिगर से सींचा है. आपने मैयार (स्तर) से कभी समझौता नहीं किया और हमेशा स्तरीय रचनाओं को तरजीह दी, सिर्फ़ नाम को नहीं देखा. ताज़ा अंक की अधिकतर कहानियां पठनीय हैं, बतौर ख़ास डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी की कहानी 'सुंदरवन की अनूठी कथा' मुंफरिद और दिलचस्प है.

मनाज़िर हसन 'शाहीन'

१६१ मिल्लत कॉलोनी, गया-८२३००१
मो. ९६६१२१४१११

▶▶ अरविंद जी, मैं नहीं चाहता कि 'कथाबिंब' के हर अंक के 'लेटर बॉक्स' में मेरा पत्र शामिल हो. लेकिन मैं मज़बूर हूं और इस दिल के हाथों विवश हो गया हूं. 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २०१९ ने यथार्थ परक ऐसा खाका खींचा है कि मैं आपके संपादक मंडल की सहयोगी डॉ. राजम पिल्लै की तारीफ़ किये बिना नहीं रह सकता. यह 'कथाबिंब' का सौभाग्य है कि डॉ. राजम ने अपनी सशक्त लेखनी का सौभाग्य दीप जलाकर 'कथाबिंब' के द्वार को हमेशा के लिए प्रज्ज्वलित कर दिया है.

इस अंक में डॉ. राजम ने सुब्बुलक्ष्मी के बारे में विस्तृत जानकारी देकर दक्षिण भारतीय अर्चना परंपरा में अपने हाथों से पुष्पों की वर्षा की है. दक्षिण भारत का इतिहास, देव-दासियों की दुर्दशा, अंग्रेज़ों, फ्रेंचों द्वारा व्यापार के लिए भारत में प्रवेश और अपने से दोगुनी उम्र के ब्राह्मण पुरुष सदाशिवम से ब्याह करने आदि का कुशलता एवं योग्यता व जिस भाषाशैली, वाक्य विन्यास और दिल की गहराई में उतरते हुए शब्दों के साथ वर्णन किया है कि मेरे हाथ उनके चरणों का स्पर्श कर लेने की ओर झुकते हैं. 'भारत रत्न' सुब्बुलक्ष्मी का संघर्ष और उनकी प्रतिभा दुनिया को सदैव पुष्पित, पल्लवित करती रहेगी. मैं नहीं जानता कि 'कथाबिंब' का आरंभ किन परिस्थितियों में और किस कठिन दौर में हुआ पर मैं अरविंद जी और मंजुश्री जी का शुक्रगुज़ार हूं कि उन्होंने डॉ. राजम पिल्लै की योग्यता और विलक्षण प्रतिभा को देख समझकर उन्हें 'कथाबिंब' के साथ जोड़कर उन्हें सम्मानित किया.

निश्चित ही 'औरतनामा' के द्वारा डॉ. राजम पिल्लै ने पितृसत्ता की बौद्धिक सोच की धुंध को सहज ही उजागर किया है. उनके 'औरतनामा' में समझने और महसूस करने की बात है. इस स्तंभ के प्रथम, शब्द 'कौशल्या सुप्रजा राम' ने मेरी जिज्ञासा की खिड़की खोल दी, इसलिए अंतिम तक शब्दों को बहुत ही मितव्ययिता के साथ प्रयोग में लेने के कारण लेख सामयिक बन पड़ा है. जिस देश में देवदासी प्रथा 'वेलम्मा मंदिर' में आज भी व्यवहार में हो और छोटी बच्चियों का दैहिक शोषण पंडे-पुजारी आज भी करते हों, वहां धर्म किस हद तक घातक है इसे स्त्रियां नहीं समझना चाहतीं.

आज की अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाएं तो पहले पन्ने से लेकर अंतिम पेज़ तक राजनीति की कारगुज़ारियों और जनमत की कोख़ से विकृत शिशु पैदा करने की होड़ में लगी हैं. ऐसी पत्रिकाओं में साहित्य को ढूंढ़ पाना दुरूह होता है. 'कथाबिंब' के इस अंक में कीर्ति दीक्षित की कहानी 'केर, बेर की दोस्ती' को पहली कहानी देकर आपने बुद्धिजीवी पाठकों के साथ अन्याय किया है. कहानी इतनी निम्न स्तर की है कि उसमें कोई कथ्य, दिल को छू लेने वाली कोई संवेदना नहीं है. बेहद उबाऊ और घटिया टाइप की कहानी है यह.

इसी स्तर की कहानी डॉ. अशोक गुजराती की 'बिला वजह' है. अनेक उपलब्धियां हासिल करने के बाद भी वे 'कथाबिंब' के पाठकों के साथ न्याय नहीं कर पाये. डॉ. उमेश कुमार सिंह की कहानी 'ज़हर का प्याला' भी समसामयिक नहीं बन पायी है. यद्यपि डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी की कहानी 'सुंदरवन की अनूठी कथा' इंसान और जानवर के मनोभावों के मनोविज्ञान को उजागर करती है. इसी तरह सुरेंद्र रघुवंशी की 'कथा पंडाल' भी प्रभावित करने में सफल रही.

स्त्रियों को अंधविश्वासी माना जाता है. इसलिए वे समझ नहीं पातीं कि प्रवचन देने वाला कितना धूर्त है. धर्म स्त्रियों को कब्ज़े में रखने का एक ऐसा आकर्षक उपकरण है जिसमें फंसकर स्त्रियां प्रसन्न हैं और धर्म का धंधा यथावत चल रहा है. दिलीप दर्श की कहानी 'फिर वही सड़क' भी आदमी की जिजीविषा और उसके सतत जूझते रहने की कहानी है.

मुझे अफ़सोस है कि मैं 'कथाबिंब' की समीक्षा कभी विस्तार से नहीं कर पाया क्योंकि सीमित वर्कों में ही गागर में सागर भरना होता है. इसलिए इतना ही कहूंगा कि ग़ज़लें, लघुकथाएं और डॉ. रमाकांत शर्मा द्वारा लिखित सूर्यबाला के उपन्यास की समीक्षा बेहतर है. साथ ही नीतू सुदीप्ति के कहानी संग्रह 'छंटते हुए चावल' की समीक्षा पढ़कर लगता है संग्रह पढ़ना ज़रूरी है. मंजुश्री द्वारा लिया गया नैनीताल का फ़ोटो आवरण पृष्ठ पर छापकर आपने स्वर्गिक आनंद की अनुभूति करा दी है.

विक्रम जनबंधु,
क्वा. नं. १७-ए, स्ट्रीट एवेन्यू बी, सेक्टर-१, भिलाई नगर-४९०००१. मो. ९७५५३५२६

▶▶ 'कथाबिंब' का १४६वां अंक मिला. मैं पत्रिका का आजीवन सदस्य हूं. इसका हर अंक पढ़ पाने की भूख खलती है, क्योंकि कुछ अंक मुझे नहीं मिल पाते. इसमें आपका कोई दोष नहीं है. हमारी ग्रामीण डाक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है. अभी-अभी दसवीं का एक छात्र १०६ व ११० वां अंक पढ़कर वापस कर गया और १२२ वां ले गया. यह छात्र पुस्तकालय में मौजूद अन्य पत्रिकाओं की अपेक्षा 'कथाबिंब' को पढ़ना ही पसंद करता है, यही नहीं पत्रिका की प्रत्येक रचना की तारीफ़ भी करता है. मेरा एक अघोषित पुस्तकालय है. कभी यह पुस्तकालय श्री कमलेश्वर जी के कर कमलों द्वारा स्थापित हुआ था. कुछ आर्थिक व कुछ राजनीतिक कारणों से पुस्तकालय बहुत आगे नहीं बढ़ पाया. अब कुछ इने-गिने, चुनिंदा पाठक हैं. बच्चों में अच्छा साहित्य पढ़ने की रुचि अधिक है. ज़रूरतमंद पाठकों के हाथों में हिंदी साहित्य पहुंचे इस भावना से पुस्तकालय की शुरुआत हुई थी. उन्होंने बहुत सारी पुस्तकें पुस्तकालय आरंभ करने के लिए दी थीं. वर्तमान में निस्वार्थ भाव से कमलेश्वर जी की आदर्श भावनाओं को सींचने में लगा हूं.

'कथाबिंब' के हर अंक में कथाओं पर आपकी टिप्पणी व सामाजिक-राजनैतिक टिप्पणी, आतंकवाद हो या घोटालों का सच पत्रिका की बुनियाद को ठोस बना देता है. इस अंक में कीर्ति दीक्षित की कहानी 'केर-बेर की दोस्ती' अच्छी लगी. आपसी उठा-पटक के बावजूद भी दोस्ती की भावनाओं

को अंत तक बरकरार रखती है. 'फिर वही सड़क' दिलीप दर्श की कहानी भी प्रशासन की व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करती है. 'कथा-पंडाल', सुरेंद्र रघुवंशी की कहानी तथाकथित ज्ञान-दर्शन के पीछे छिपे हवस के भेड़ियों के दर्शन कराती है, अपने प्रांत के बाबा राम रहीम पर सटीक बैठती है, जो आजकल रोहतक जेल में अपने कर्मों का बिल चुकता कर रहे हैं. अशोक गुजराती की 'बिला वजह' और 'सुंदरवन की अनूठी कथा', उमेश कुमार सिंह की 'ज़हर का प्याला' भी बहुत कुछ सोचने पर विवश करती हैं. लघुकथाओं, कविताओं और 'आमने-सामने', समीक्षा, डॉ. राजम पिल्लै का 'औरतनामा' पढ़ने से आत्मीय सुख मिला. 'कथाबिंब' साहित्य, समाज की रग-रग में बसे यही मेरी कामना है.

नयपाल सिंह चौहान
गांव –तिगरा, पो. नाहरपुर,
जि. यमुनानगर-१३५००१. (हरि.).
मो.९९९१६५०१२०

▸▸ एक जरा अलग प्रतिक्रिया...

कथाबिंब अंक १४६ अप्रैल-जून २०१९ संपादिका मंजुश्री के कैमरे से नैनी झील की सुंदरता समेटे प्राप्त हुआ.

'कुछ कही, कुछ अनकही' द्वारा प्रधान संपादक डॉ. 'अरविंद' जी ने आदतन मन का सब कुछ कह दिया. बुआ-भतीजे के गणित से लेकर 'मोदी है तो मुमकिन है' की कैमिस्ट्री तक! नयी खुली हवा में, खुले दिल से, तिस पर हिदायत यह कि लोकतंत्र में विपक्ष का 'स्वस्थ' होना परमावश्यक है. वरना वही 'कंबलवाला' हास्यास्पद बहाना! इस संपादकीय में आपको गर कुछ 'अनकहा' लगा हो तो सुधा वर्मा का 'दर्द' समझिए न! रोशनी जल रही मीनारों में, आग झोपड़ों में लग गयी कैसे? प्रतिपक्ष मात्र विरोध के लिए ही विरोध ना कर पाये, इसलिए ऐ बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों सुनो :

ख़ूब चाहत है जिससे मिलने की,
पास उसकी सही ख़बर रखना।
लोग सारे यकीं करें जिस पर,
बात बेबाक इस कदर रखना।
(गज़लकार: नवीन माथुर 'पंचोली')

बात कहानियों की करें तो सिलसिला शुरू करें कीर्ति दीक्षित की 'केर-बेर सी दोस्ती!' से. कथा लेखन के हर पारंपरिक पहलू को नया अंजाम देती हुई अभिव्यंजनाओं से सुशोभित, हिंदी समझनेवाले आम शहरी युवा पाठक के लिए सरल ग्राह्य भाषा! यही तो है आज के हिंदी पाठक की मांग. बरबस हंसी छूट जाये ऐसे विनोदपूर्ण प्रसंग तो कहीं नितांत मार्मिक! एकांत में ढलती उम्र की संवेदनाओं का यथार्थ चित्रण! क्या कहूं; कौन-कौन से उद्धरण पेश करूं... न ना! कहानी पढ़े बिना बात नहीं बनेगी. जैसे भी हो, ज़रूर पढ़ें! 'फिर वही सड़क', ऊबड़-खाबड़, जिसमें उम्मीदों का ट्रैक्टर धंस जाता है और हो गया बंटाधार! फिर भी मकुंदी को ढाढस बंधाते जुलमी की बातों में संतोष और आशा! बहुत हुआ, बस अब न चुप रहा जाता, चला जो कारवां तो वक़्त बदलेगा नहीं कैसे? (ग़ज़लकार: सुधा वर्मा, दर्द) 'भ्रामरी और कपाल-भाति योग एक साथ मोबाइल में ही संभव है, इंसान में नहीं.' इस वाक्य का संदर्भ और सड़क की 'जात' व 'किलास' का ऐतिहासिक किस्सा जानना हो तो ज़रूर पढ़िए दिलीप दर्श जी की यथार्थवादी सारगर्भित यह कहानी. अब प्रख्यात कथाकार सुरेंद्र रघुवंशी जी का 'कथा-पांडाल', जिसमें विराजमान हैं राष्ट्रीय संत स्वामी आनंद देव महाराज. शहर के सभी रास्ते कथा-पंडाल की तरफ़ और हर रास्ते से गुज़रते भक्तगण. पर कथा के दूसरे दिन ही सब उलट-पलट! स्वामी जी का तथाकथित कच्चा चिट्ठा खोलते हुए कुछ विरोधी, लाल झंडों के साथ वहीं पहुंच गये, सारी क़ानून व्यवस्था को दर किनारे कर! उनका मुखिया, शैलेश कुमार मुझे खलनायक लगने लगा. यह कोई तौर-तरीक़ा नहीं. खैर, लड़ाई-झगड़े, गाली-गलौज और लांछनों की ओखली के बीच आम ईमानदार जनता (किराये के टट्टू नहीं) क्योंकर अपना सिर देती! अगली कहानी, मानव की मानसिकता और मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती हुई डॉ. अशोक गुजराती की नायाब 'बिला वजह'. चोरी शौक़ है आलोक का या समझिए लत! दिखने में भी वह काइयां जबकि विशद विशुद्ध सज्जन. उसे भी आदत हो गयी है आलोक के धोखों की. सब जानते-बूझते भी आलोक के जाल में फंसने को उतारू. इस प्रवृत्ति का मनोचिकित्सा में कोई तो नाम होगा ज़रूर! दो दोस्तों की ये अजूबा आदतें इंसानी फितरत के नये तेवर को दर्शाती हैं. 'ज़हर का प्याला' आत्मकथा है राजकुमारी कृष्णा की. राजकुमारी परंतु स्थिति दयनीय! तिस पर 'जौहर' और 'उत्सर्ग' का कलेवर! प्रतापवंश के पुरुषों द्वारा स्त्री का 'टोटल ब्लैकमेल'!

(शेष पृष्ठ ५५ पर...)

तुम हो तो...

✍ संतोष श्रीवास्तव

कहानी, उपन्यास, कविता, स्त्री विमर्श, संस्मरण की अब तक अठारह किताबें प्रकाशित. दो अंतर्राष्ट्रीय (ताशकंद, बैंकॉक) तथा सोलह राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार. जेजेटी विश्वविद्यालय राजस्थान से पीएचडी की मानद उपाधि. 'मुझे जन्म दो मां' स्त्री के विभिन्न पहलुओं पर आधारित पुस्तक रिफरेंस बुक के रूप में सम्मिलित. ६ पुस्तकों पर मुंबई विश्वविद्यालय, एसएनडीटी महिला महाविद्यालय, तथा डॉ. आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा से एमफ़िल हो चुकी है. राजा भर्तहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर से कहानियों पर तथा भोपाल के रविंद्र नाथ टैगोर विश्वविद्यालयय से उपन्यासों पर पीएचडी हो रही है. कहानी 'एक मुट्ठी आकाश' एस. आर. एम. विश्वविद्यालय चैन्नई में बी. ए. के कोर्स में तथा लघुकथाएं महाराष्ट्र राज्य के ११वीं की 'बालभारती' में. भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा विश्व भर के प्रकाशन संस्थानों को शोध एवं तकनीकी प्रयोग (इलेक्ट्रॉनिक्स) हेतु देश की उच्चस्तरीय पुस्तकों के अंतर्गत 'मालवगढ़ की मालविका' उपन्यास का चयन, केंद्रीय अंतर्राष्ट्रीय पत्रकार मित्रता संघ की मनोनीत सदस्य. जिसके अंतर्गत २६ देशों की प्रतिनिधि के तौर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए यात्रा.

: संप्रति :
स्वतंत्र पत्रकारिता.

'आ बला पा कोई इस दश्त में आया होगा. वरना आंधी में दिया किसने जलाया होगा...' ग़ज़ल अपनी तरन्नुम में हवा के संग हिलोरे लेते जब मीरा के कानों में पड़ी तो उसके होंठ थरथराए और पलकें हौले से झपकीं जैसे तितली के परों ने पंखुड़ी को छू लिया हो. कपिल बस इस एक दृश्य के लिए इस ग़ज़ल से मोहब्बत करने लगा है. वह देख रहा है उस गुनगुनाते-छलकते झरने को जो वहीं का वहीं फ्रीज़कर दिया गया है... पिछले पंद्रह बरसों से मीरा बिस्तर पर ज़िंदा लाश बनकर रह गयी है. न उसके शरीर का कोई अंग हरकत करता है न होठों से बोल फूट पाते हैं... हालांकि वह कोशिश करती है लेकिन बोल थरथराकर गले में वापिस लौट जाते हैं... बोलों की इस वापिसी को मीरा महसूस करती है. वह देख सकती है, समझ सकती है, सोच सकती है पर ज़बान सुन्न है, शरीर सुन्न है, बस होंठ जागे हुए हैं क्योंकि इन होठों तक उस वहशी दरिंदे की पहुंच नहीं थी. कैसे भूल सकती है वह काला सोमवार... वह काली शाम जब सूरज अपनी किरणें समेट लजाया-सा सागर की उर्मियों में समा जाने को आतुर था और जब वह विज्ञान प्रयोगशाला में अपने प्रयोग के अंतिम चरण पर थी तभी किसी के कठोर हाथों ने उसे दबोच लिया था. मीरा को अच्छी तरह याद है प्रयोगशाला में एक भी विद्यार्थी न था और सजल मैडम के यह कहने पर कि 'मीरा, तुम डिटेल्स नोट करके घर चली जाना... मेरा अर्जेंट कॉल है, जाना पड़ रहा है.' 'ओ. के. मैम' कहकर वह काम में तल्लीन हो गयी थी. शाम दबे पांव कॉलेज़ के सहन में लगे दरख़्तों की ओर बढ़ रही थी और तभी... मीरा लड़खड़ा गयी... वह उस कठोर बाहुपाश को छुड़ाती, चीख़ती कि उसके कपड़ों को वह वहशी दरिंदा तार-तार करता जा रहा था — 'बहुत अकड़ दिखाती है साली... आज तुझे मुंह दिखाने लायक नहीं छोड़ूंगा.'

कौन था वह...? मुंह में ठूंसे जाते उसके ही दुपट्टे का छोर उसकी आंख़ों पर परदा बनकर छा गया था और अपने रौंदे जाते शरीर के संग-

संग सारी शक्ति चुकने के पहले उसने उसके चेहरे को नोचना शुरू कर दिया था, तभी आंखों पर से दुपट्टा हटा और वह चीख़ पड़ी — 'करन... तुम...!' एक क्रूर मुस्कुराहट करन के चेहरे पर थी... जाते-जाते करन ने मीरा का सिर टेबल के पाये से टकरा दिया था. ख़ून के फव्वारे के कुछ छींटे करन की शर्ट पर भी पड़े थे. मीरा बेहोश हो गयी थी. घंटों उसी हालत में पड़ी रही थी वह. चौकीदार जब प्रयोगशाला बंद करने आया तो उसने मीरा की ऐसी हालत देख तुरंत अस्पताल पहुंचाया और उसके मोबाइल में फीड नंबरों पे फ़ोन लगाने की कोशिश करने लगा. पहला फ़ोन कपिल का ही लगा. अस्पताल में मीरा की हालत देख कपिल रो पड़ा था. डॉक्टर ने बताया कि सिर में चोट लगने और भारी सदमे की वजह से दिमाग़ तक ऑक्सीजन पहुंच नहीं पा रही है. कपिल निरुपाय–सा कभी डॉक्टर को और कभी अभी-अभी पहुंचे मीरा के मां-पापा को देखता रह गया.

'तो ऑक्सीज़न पहुंचाइए न! कुछ करिए... आख़िर चोट क्यों और कैसे लगी? क्या हुआ मेरी बेटी के साथ?' मीरा के पापा ने डॉक्टर के कंधे झंझोड़ डाले थे. मां फटी-फटी आंखों से अस्पताल के गलियारे की दीवारों को तक रही थीं... मीरा उनकी एक मात्र संतान थी जो बड़ी मन्नतों के बाद पैदा हुई थी. मीरा है भी हज़ारों में एक... पढ़ाई में नंबर वन... हर फन में माहिर. नाचना, गाना, चित्रकला... इन कलाओं की दीवानी मीरा को कपिल भी तो आर्ट गैलरी में मिला था. वह चित्रकार था और एनिमेशन का कोर्स अभी-अभी चीन से सीखकर लौटा था. उनकी वह पहली मुलाक़ात मक़सद बन गयी चित्रकला को ऊंचाइयों तक ले जाने में और वह मक़सद कब प्यार में तब्दील हुआ दोनों ही नहीं जान पाये. वे जो सारी-सारी रात एक दूसरे के बारे में सोचते हुए गुज़ारते थे, वे जो एक दूसरे से न मिलने पर तड़प उठते थे, अगर यह प्यार है तो हां वे प्यार करते हैं एक दूसरे को... अगर एक पल भी एक दूसरे के बिना गुज़ारना जानलेवा है तो हां वे प्यार करते हैं एक दूजे को...

'देखिए अभी वो कोमा में है, हम कोशिश कर रहे हैं.' डॉक्टर ने बहुत धीमी आवाज़ में विस्फोट–सा किया उनके बीच. और उसके जाते ही आई. सी. यू. का दरवाज़ा बंद हो गया. जैसे नाज़ियों का चैंबर... फिर देर तक लंबे गलियारे में सन्नाटा पसरा रहा.

दूसरे दिन सुबह से ही पूरा कॉलेज़ वहां जमा था. मीरा के सभी दोस्त, क्लासमेट्स, प्रोफ़ेसर्स, प्रिंसिपल... कोई नहीं जानता था कि प्रयोगशाला में ऐसा क्या हुआ जो मीरा दुर्घटनाग्रस्त हो गयी. चौकीदार को मीरा बेहोश मिली, लगभग नग्नावस्था में. वह उसे चादर ओढ़ाकर अस्पताल लाया था. डॉक्टर की रिपोर्ट दिमाग़ी चोट बताती है... लेकिन शक की सुई बलात्कार पर भी अटक रही है. डॉक्टर सिद्ध करें तो पुलिस रिपोर्ट में लिखे ऐसा. बहरहाल मात्र दुर्घटना का केस दर्ज़ कर पुलिस लौट गयी. ऑक्सीजन मास्क में मीरा की चढ़ती उतरती सांसें, नसों में खुबी इंज़ेक्शन की सुइयां, नलियां, थरथराते होंठ जैसे कुछ कहना चाह रहे हों, बताना चाह रहे हो. मां, पापा और दूर खड़े कपिल को देख झपकती पलकें... मां अपनी अवश रुलाई रोक न पायीं... उनकी फूल-सी बिटिया की ऐसी छीछालेदर?

डरते-डरते कपिल ने पापा की पीठ पर हाथ रखा... उन्होंने प्रतिरोध नहीं किया बल्कि उसके कंधे पर ख़ुद को ढह जाने दिया, बह जाने दिया. हादसे इंसान को एक कर देते हैं... यही पापा थे जिन्हें मीरा की कपिल से नज़दीकी से सख़्त एतराज़ था लेकिन आज... उन्हें संभलने के लिए कपिल के कंधों की ज़रूरत आन पड़ी.

मीरा के तमाम शरीर को हर प्रकार की डॉक्टरी जांच से गुज़रना पड़ा और तब जाकर पता चला कि मीरा के साथ बलात्कार हुआ है और उसकी हत्या का प्रयास भी. धीरे-धीरे हर बात उजागर हुई. पुलिस मामले की तह तक गयी. मीरा के सहपाठियों की लिस्ट तैयार की गयी. हादसे के दिन कितने विद्यार्थी प्रयोगशाला में थे. कितने मीरा को देखने अस्पताल आये. एक करन को छोड़कर सभी तो आये. पुलिस ने करन को धर दबोचा और आनन-फानन में दृश्य से परदा उठ गया. करन कोई क्रिमिनल तो था नहीं... मीरा को न पा सकने की छटपटाहट उससे अपराध करवा गयी. जुर्म सिद्ध होते ही जब करन को मीरा के सामने लाया गया तो मीरा के शरीर में एक हलकी सी जुम्बिश हुई... उत्तेजना उसके मुंह से झाग बनकर बाहर फूट पड़ी और आंखों से गरम आंसुओं का सोता बह निकला. पल भर को लगा कि मीरा का शरीर चेतन हो गया है कि वह नॉर्मल हो गयी है पर... वो बुझती लौ की भभक थी... लौ बुझने के बाद धुआं ही धुआं...

पुलिस जब करन को जीप में बैठाकर ले जा रही थी कपिल की आंखों के अंगारे ललकार बन कर उसकी राहों में बिछते जा रहे थे... 'अगर क़ानून ने तुझे छोड़ दिया न करन

तो इस कपिल की बस एक गिरफ़्त ही तेरे अंत के लिए काफ़ी होगी.'

पापा ठगे से खड़े जीप के पहियों से उठती धूल के गुबार में अपना संसार लुटता देख रहे थे. अब कुछ न बचा था उनकी ज़िंदगी में. कैसे वे मीरा के बिना ज़िंदगी जियेंगे? कैसे उसकी मां को संभालेंगे. मीरा तो अस्पताल में क़ैद होकर रह गयी... 'हे प्रभु... क्या बिगाड़ा था हमने किसी का जो ऐसी सज़ा मिली? या तेरे न्याय के खाते में बेगुनाहों के लिए ही सज़ा दर्ज़ है?'

महीने भर की जांच और इलाज के बाद डॉक्टरों ने यह तय पाया कि मीरा की हालत में सुधार की गुंजाइश न के बराबर हैं. हालांकि डॉक्टर्स ये कभी नहीं कहते कि मरीज का मर्ज़ लाइलाज है लेकिन मीरा की हालत जब सुधर ही नहीं रही थी और मां पापा के निरंतर पूछे गये सवालों के उनके पास जवाब न थे तो उन्होंने भी उन्हें अंधेरे में नहीं रखा फिर भी आशा की एक किरन कपिल के मन में बाक़ी थी. डॉक्टरों ने मीरा को डिस्चार्ज़ करने से इंकार कर दिया था. अस्पताल में सभी सुविधाओं से युक्त कमरा मीरा को दिया गया जो छठवीं मंज़िल पर था और जिसकी खिड़कियां खोलते ही नारियल के दरख़्तों के झुरमुट से झांकती समंदर की लहरें साफ़ दिखायी देती थीं. मीरा के लिए एक अलग नर्स नियुक्त की गयी. सुबह-शाम मरीजों से मुलाकात के निर्धारित समय में बारी-बारी से मां-पापा आते. कपिल कभी भी आ जा सकता था क्योंकि उसने मीरा की देखभाल का पूरा ज़िम्मा ले लिया था. काम से फुरसत पाते ही कपिल आ जाता. निश्चल, निरुपाय मीरा के होंठ थरथराने लगते... जैसे वह मुस्कुराने की कोशिश कर रही हो, जैसे अपनी ख़ूबसूरत आंखों की पुतलियों को झपका-झपका कर उसे धमका रही हो — 'आज फिर लेट आये?'

और कपिल उत्तर तलाशता है... क्या कहे? कितनी बार ये सवाल मीरा ने दोहराया है. कभी समंदर के किनारे बालू पर टहलते हुए... कभी पृथ्वी थियेटर की कैंटीन के आगे पड़ी कुर्सियों पर कॉफी पीते हुए... वह जगह उनकी पसंदीदा जगह थी. वे कोने की तरफ़ की टेबल चुनते जहां अक्सर मद्धिम-सी रोशनी होती. उस रोशनी में मीरा की आंखों में तैरते सपनों को मानो मंज़िल-सी मिल जाती.

'अगले साल मेरा डांस कोर्स पूरा हो जाएगा. आठ सालों से कत्थक सीख रही हूं... अब स्टेज़ शो पर ध्यान देना है.' कपिल मुग्ध हो उसे निहारता रहता.

'और तुम बनाओगे मेरी हर नृत्य मुद्रा की पेंटिंग... मैं मेनका-विश्वामित्र पर नृत्य नाटिका तैयार करूंगी और तुम उसके चित्रों की आर्ट गैलरी में प्रदर्शनी लगाओगे.'

'डन.' दोनों एक साथ अपनी दाहिनी हथेली को टेबिल पर ज़ोर से मारते और फिर पंजा लड़ाने की मुद्रा में एक दूसरे की हथेली पकड़ लेते. बस इतना ही... इतना ही स्पर्श रहा दोनों के बीच. इसके आगे कभी उन्होंने हदें नहीं तोड़ीं. पृथ्वी थियेटर के लॉन को पारकर वे तट की ओर बढ़ते. मीरा की सैंडिलों में रेत भरने लगती तो वह सैंडिलें उतार कर उन्हें उठाने को झुकती कि कपिल तुरंत सैंडिलें उठा लेता... अंधेरा धीरे-धीरे तट की ओर बढ़ता. दोनों देखते ठहरे-ठहरे से समंदर को जैसे कोई शोख लहर आकर उसमें समा गयी हो. आसमान में उगे दूज के चांद का नन्हा सा अक्स समंदर के काले दिखते जल को हल्का-सा रुपहला बना रहा था.

'अगले पखवाड़े पूरनमासी का चांद उगेगा और समंदर की लहरें बेताबी से चांद को छूने की कोशिश में ज्वार बन जाएंगी.'

'पिछले दिनों समंदर के ज्वार में एक प्रेमी जोड़े ने आत्महत्या कर ली थी.'

'कायर थे वे... ज़िंदगी का सामना नहीं कर पाये.'

'कोई तो मज़बूरी रही होगी?' कपिल ने शंका प्रकट की थी.

'नहीं, मज़बूरी कभी इंसान को कायर नहीं बनाती बल्कि मज़बूत बनाती है. ज़िंदगी में सब कुछ सरल हो तो जीने का मज़ा ही क्या?'

आत्मविश्वास से भरी मीरा की आंखों में कहीं न कहीं ख़ुद भी था कपिल. वैसी ही सोच... वैसा ही जज़्बा... कुछ कर गुज़रने की चाहत. पाना नहीं सिर्फ़ देना ही देना... तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूं और खाली हो जाएं हम दोनों... चिरअभिलाषित... क्या है तुममें मीरा जो मैं थम-सा गया हूं तुम में.

अचानक टिटहरी की आवाज़ से दोनों चौंक पड़े थे. दोनों जो डूब चुके हैं एक दूजे में... दोनों जो नहीं जानते प्यार क्या है... पर यह जानते हैं दोनों कि वे इस धरती पर एक दूजे के लिए आये हैं.

पक्की सड़क पर आते ही मीरा ने अपने पैरों की रेत झटकार के सैंडिलें पहन लीं. ग़ज़ब का संतुलन है उसमें. एक ही पैर पे खड़ी हो दूसरे पैर की रेत झटकार लेती है. एक विदेशी जोड़ा पास से गुज़रा. मर्द ने अपना हैट उतारकर

उनका अभिवादन किया. औरत ने भी मुस्कुराकर हैलो कहा. ये कौम ही ऐसी है. सबको स्वीकारती चलती है बिना जान पहचान के ही.

दूसरे दिन मीरा का फ़ोन था — 'कपिल, शाम को फ्री हो?'

'क्यों, कुछ ख़ास?'

'सोचती हूं पढ़ाई के साथ-साथ विश्वामित्र-मेनका पर भी काम कर लें. करन भी आ रहा है.'

'कहां आना है?'

'कॉलेज़ कैंपस... हरी घास का लॉन.' मीरा की आवाज़ में चुलबुलापन था. जाने क्यों करन कपिल को बहुत इरिटेट करता है. मीरा आज़ाद है, चाहे जिससे दोस्ती करे पर कपिल करन से मिलना पसंद नहीं करता. उस दिन यानी वैलेंटाइन डे पे कैसे पूरे तीस लाल गुलाबों का गुच्छा मीरा को प्रपोज़ करने के लिए लाया था और मीरा के हंसी उड़ाने पर सारे गुलाब चीथकर हवा में उड़ा दिये थे. पक्का नाटककार है. ख़ैर मीरा ने बुलाया है तो जाना तो पड़ेगा ही... हालांकि आज उसे एनिमेशन का काम पूरा कर लेना था. वह स्पैरो कंपनी से जुड़ा है और चीन से लौटने के बाद लगातार स्पैरो के लिए ही काम कर रहा है. उसके बनाये एनिमेशन-गेम बड़े लोकप्रिय हो रहे हैं. लेकिन उसे चित्रकला पर भी ध्यान देना है. मीरा के बनाए कोलाज़ और सेल्फ़ पोट्रेट लाजवाब होते हैं. उसके हाथों में जादू है. उसके चित्र बोलते हैं. संवादों को दर्शकों तक पहुंचाते हैं, अब नृत्य पहुंचायेंगे.

रात आठ बजे तक तीनों विश्वामित्र मेनका की थीम पर काम करते रहे. एक ही दृश्य कई-कई बार लिखा गया. करन उन संवादों को गीत की शक्ल देगा. गायकों की सूची भी तैयार की गयी. कॉलेज़ में रात्रिकालीन क्लासेज़ के विद्यार्थियों का जमावड़ा शुरू हो चुका था. काम निपटाकर जब वे बाहर निकले तो मीरा के घर तक जाने वाली बस के लिए वे बस अड्डे पर खड़े हो गये. मीरा की आंखों की चमक काम की संतुष्टि का बयान कर रही थी. तभी करन ने मीरा के बालों में अटके तिनके को निकालने के बहाने उसके बालों को मुट्ठी में भर लिया. मीरा की आंखों की चमक ग़ायब हो गयी — 'बिहेव योर सेल्फ़ करन, मुझे ये सब पसंद नहीं प्लीज़.'

'भड़कती क्यों हो यार, मैं तो तिनका निकाल रहा था.'

'अटका रहने देते... यहां कौन सी फ़ैशन परेड हो रही है.'

मीरा ने रूखेपन से कहा. वह जानती है करन उससे क्या चाहता है. कई बार प्यार का इज़हार भी कर चुका है. मीरा के मन में ऐसा कुछ भी नहीं है. ये दोनों सहपाठी हैं और अच्छे दोस्त हैं, मीरा ऐसा मानती है. बस आते ही मीरा फुर्ती से चढ़ गयी... कपिल ने करन से बिना कुछ कहे एक खाली ऑटो को हाथ दिखाया.

'तुम किस तरफ़ जा रहे हो कपिल?'

'पैडर रोड.' कपिल ने जानबूझकर ग़लत कहा क्योंकि उसे पता है करन को ग्रांट रोड रेलवे स्टेशन से बोरीवली के लिए लोकल लेनी है.

महीनों के अथक प्रयास से स्क्रिप्ट तैयार हो गयी लेकिन करन बस एक ही गीत लिख पाया था. इस बात को लेकर एक दिन दोनों में झड़प भी हो गयी.

'तुम मेरी स्क्रिप्ट पर काम करना नहीं चाहते तो बता दो न, लटका कर क्यों रखे हो करन?'

'मेरी ये मजाल! मैं तो तुम्हें बाहों में छुपाकर रखना चाहता हूं, फूल की तरह सहेज कर.'

'करन प्लीज़, कभी तो सीरियस रहा करो.' मीरा ने अपने माथे पर सलवटों को पड़ने से रोका... वह नाराज़ हो जायेगी तो करन का हौसला बढ़ सकता है.

'मैं सीरियस ही हूं मीरा... रात रात भर जाग कर गीत लिखूंगा तुम्हारे लिए... बस एक बार कह दो.'

'नो... नेव्हर... हम सिर्फ़ अच्छे दोस्त हैं.'

'आख़िर मुझमें क्या कमी है?' कहते हुए करन ने उसका हाथ पकड़कर हथेली मसल डाली —'क्या मैं तुम्हें सुख नहीं दे सकता?'

मीरा ने उसी हथेली का एक ज़ोरदार थप्पड़ उसके मुंह पर मारते हुए कहा — 'इनफ़...अब हम कभी नहीं मिलेंगे... मैंने तुम्हें पहचानने में भूल की.'

और उसके लिखे गीत का पन्ना टुकड़े-टुकड़े कर हवा में उड़ा दिया और वह तेज़ी से बस स्टॉप की ओर चल दी. उसका मन जैसे झंझावात से गुज़र रहा था. कपिल सही है, करन के लिए उसने पहले ही आगाह कर दिया था. वह ख़ुद को कोसने लगी... वह क्यों इंसान को समझने में भूल कर जाती है. आहत मन से उसने कपिल को मोबाइल लगाया —

'कहां हो तुम? जहां भी हो तुरंत आओ, मैं बस स्टॉप पर हूं.'

'क्यों, क्या हुआ? तुम्हारी आवाज़ क्यों कांप रही है? सब ख़ैरियत से तो है?'

'बस... तुम अभी आओ.'

'मैं स्पैरो में हूं मीरा. ऐसा करो तुम ही ऑटो पकड़कर आ जाओ. तब तक मैं अपना काम निपटा लेता हूं.'

मीरा बुझ गयी... सही भी तो है. कपिल काम छोड़कर कैसे आये? ग़लती उसी ने की जो कपिल की ग़ैर मौज़ूदगी में करन से मिली.

'चलो रहने दो. हम कल मिलते हैं, देर भी बहुत हो गयी है, मैं घर ही चली जाती हूं.'

फ़ोन कट करते ही बस आ गयी.

कपिल मीरा की पसंद की ग़ज़लों की सी. डी. लिये जुहू बीच पर उसका इंतज़ार कर रहा था. लहरें उफन-उफन कर चट्टानों से टकरातीं और फिर पानी का फव्वारा-सा हवा में उठता और लस्त-पस्त लहरें रेत पर दूर-दूर तक फैल जातीं. मीरा आयी पर चेहरा तनावग्रस्त दिखा — 'क्या बात है... समथिंग रांग...?'

मीरा ने पल-भर की ख़ामोशी के बाद करन के साथ हुई घटना सिलसिलेवार सुना दी.

'मुझे अकेले नहीं मिलना चाहिए था उससे.'

'अपने को दोष देना बंद करो मीरा, लाइफ़ है... हो जाता है ऐसा... हम जानबूझकर तो मुसीबत को न्यौता नहीं देते न.' और हाथ में पकड़ी सी.डी. उसे देते हुए कहा — 'तुम्हारी पसंद की ग़ज़लें.'

'इसमें आबला पा ग़ज़ल है न?'

'पहली ग़ज़ल वही है.'

तभी एक चुलबुली लहर ने दोनों के पैर भिगो दिये और लौटकर समंदर के सीने में समा गयी. मीरा के चेहरे पर आयी ख़ुशी दूर-दूर तक फैल गयी. वह भीगे क़दमों से चलते हुए गाने लगी — 'आबला पा कोई इस दश्त में आया होगा, वरना आंधी में दिया किसने जलाया होगा.'

कपिल इस ख़ुशी, इस आवाज़ और इस आवाज़ की मालिक मीरा पर अपने सौ जनम भी कुरबान कर सकता है... पर प्यार के इज़हार से हिचकिचाता है. कहीं यह इज़हार इंकारी का सबब न बन जाये... ऐसा ही मीरा भी सोचती है और इस बात से तसल्ली कर लेती है कि कम-से-कम कपिल उसके साथ तो है. लेकिन इतना सोचना ही उसे बेचैन कर गया. वह सोच तो ले ऐसा पर उस आग का क्या करे जो उसके मन को घेर रही है और उसकी तपिश से उसका रोम-रोम जल रहा है. उसके हाथों से जैसे वक़्त फिसला जा रहा है. शब्द ज़हन से फिसल कर ख़ामोशी की गहराइयों में समाते जा रहे हैं. हे प्रभु... यह मैंने कौन-सी आग पाल ली जिसमें न तेरी रहमत है न औरों की दुआ... उसने व्याकुल निग़ाहों से कपिल की ओर देखा जो समंदर को टकटकी बांधे देख रहा था. देखते ही देखते समंदर धुंध में लिपट गया. आसमान और समंदर के बीच बादल आकर ठहर गये और उस धुंध में कपिल ने चाहा कि मीरा के होठों को आहिस्ता से चूम लेने का साहस कर डाले पर तभी बादल झमाझम बरसने लगे. वह उसे कंधों से घेरे किनारा पार कर लंबी सड़क पर चलने लगा. जिसके दोनों किनारों पर लगी रोशनी की बत्तियां धुंधलाने लगी थीं. हवा की जाने किन-किन बातों पर सिर हिलाते दरख़्तों की कतारों के बीच से दोनों गुज़रते रहे.. वह एक बहुत अज़ीज़-सा सुख था, जिसे अंधेरे में चलते हुए दोनों ने एक साथ जिया था.

भविष्य के लिए अपार संभावनाओं के सपने संजोए, प्रदेश की टॉप लिस्ट में प्रथम अंक में अंकित मीरा ने विश्वामित्र-मेनका पर नृत्य नाटिका के लिए गीत लिखने शुरू ही किये थे और कपिल ने उन गीतों का चित्रबद्ध एनिमेशन शुरू ही किया था कि वह हादसा घटा. करन के दिल में मीरा जूनून की हद् तक समायी थी. अपनी नाक़ामयाबी पर उसके अंदर के राक्षस ने सिर उठाया और बलात्कार और हत्या का प्रयास उसने कर डाला. प्रेम के इस वीभत्स रूप से मीरा अनजान थी. हालांकि रोज़ ही समाचार पत्रों में ऐसी घटनाएं सुर्खियों में रहती हैं. करन को केवल आठ वर्षों की क़ैद हुई और निर्दोष मीरा को ताउम्र... यह कैसा न्याय है ईश्वर का? कपिल ने सिर धुन लिया... कैसे... कैसे वह अपनी मीरा वापिस पाये?

वक़्त कब किसके लिए रुका है. लंबे-लंबे बारह वर्ष बीत चुके हैं. अगर बारह वर्षों का वनवास मीरा बिस्तर पर भुगत रही है तो कपिल भी ज़िंदगी की सुइयां रोककर वहीं का वहीं खड़ा है. अब मीरा की तीमारदारी ही उसकी ज़िंदगी का मकसद है. सब कुछ समझती है मीरा. कहने को होंठ भी थरथराते हैं पर शब्द बाहर निकलने से इंकार करते हैं. हर बार वह कहना चाहती है — 'मेरे लिए होम की आहुति मत बनो कपिल. क्यों अपना सब कुछ स्वाहा किये दे रहे हो? मैं तो सांसों का कर्ज़ ढो रही हूं... शापग्रस्त... पता नहीं ख़ुद का शाप ढो रही हूं या किसी और का. तुम्हारा प्यार कपिल इस शाप को ढोने की हिम्मत दे रहा है. काश बीत

चुके लम्हों में समंदर के किनारे या नृत्य रिहर्सल के दौरान तुमने कहा होता कि तुम भी मुझे प्यार करते हो. पर तुम्हारी ख़ामोशी मुझे भ्रम में डाले रही. काश, मैं तब जान पाती कि तुम्हारा प्यार तो समंदर से भी गहरा और आकाश से भी ऊंचा है.' नर्स फलों का रस ले आयी थी जो उसे नलियों के सहारे पिलाया जाता है. सारा तरल भोजन ही उसके पेट में पहुंचाया जाता है. वह भूल चुकी है कपिल के साथ खायी जुहू चौपाटी की चाट, पानी पूरी, भेल पूरी, भुट्टे... पृथ्वी थियेटर की कैंटीन के समोसे, सैंडविच... और झागदार कॉफी. कितना हंसी थी पहली बार मीरा... कपिल, आधा कप झाग, आधा कप कॉफी इज़ इकुअलटु... ज़ीरो बटा ज़ीरो.'

और देर तक उनके कहकहे शाम को सिंदूरी करते रहे थे. और अचानक जैसे ज़लज़ला–सा आया कपिल को जब मीरा के पापा ने बताया कि अब चूंकि मीरा की हालत में सुधार के आसार नहीं के बराबर हैं... वे बेटी को यूं घुल-घुल कर मरते नहीं देख सकते... उन्होंने अब सुप्रीम कोर्ट में मर्सी किलिंग की अपील दायर कर दी है.

'क्या ऽऽऽ' कपिल उस ज़लज़ले में पूरा का पूरा समा गया — 'कैसे पिता हैं आप?'

'जरा सोचो बेटा... बारह साल से मीरा को नलियों द्वारा भोजन दिया जा रहा है. वह न उठ सकती, न बैठ सकती, न चल सकती, न बोल सकती... सोचो कपिल, क्या उसे जीने का अधिकार मिल रहा है? क्या मायने उसके जीवित रहने के... यही कि हम उसे आंखें खोलते, बंद करते और मुस्कुराते... नहीं बल्कि मुस्कुराने की कोशिश करते देखते रहें? बारह सालों से हमने भी कहां जीवन जिया? कमाई का एक बड़ा हिस्सा अस्पताल में ख़र्च हो रहा है. मीरा की मां भी थक चुकी हैं रोते, बिसूरते और सब कुछ संभल जाने की उम्मीद करते. अब रह ही क्या गया है हमारी ज़िंदगी में.'

'लेकिन मेरी ज़िंदगी में तो रह गया है बहुत कुछ... मैं अपनी मीरा को अपने संग तो पा रहा हूं... उसके थरथराते होठों के संवाद तो सुन रहा हूं, उसकी झपकती पलकों के इशारे तो देख रहा हूं... मेरे जीवन में है, मीरा है पापाजी.'

कपिल ने कहना चाहा था पर अपने जज़्बातों पर ख़ामोशी की चादर तान वह निढाल बैठा ही रह गया. मन उचाट था. अस्पताल से निकलकर वह निरुद्देश्य सड़क पर भटकता रहा... यूकिलिप्टस के झड़े नुकीले पत्तों को अपनी ठोकर से उछालता रहा. आदमी सिर्फ़ अपने लिए सोचता है, अपने लिए जीता है. मीरा के माता-पिता थक चुके हैं और मीरा से छुटकारा पाना चाहते हैं. उनके लिए अब मीरा पर समय और धन ख़र्च करना बेकार है. क्या उन्होंने यह सोचा कि कपिल भी तो बारह वर्षों से जहां के तहां है? मीरा की ख़ातिर न उसने शादी की न ज़िंदगी की कोई ख़ुशी, कोई रौनक, कोई मनोरंजन पाया. उसके मन में तो कभी यह विचार नहीं आया कि मीरा न रहे और वह अपनी ज़िंदगी जिये.

रात भर वह कशमकश से गुज़रता रहा. उसे मीरा को ज़िंदा रखना है. किसी भी कीमत पर ज़िंदा रखना है. सुबह उसने एडवोकेट का द्वार खटखटाया और सुप्रीम कोर्ट में मीरा के मर्सी किलिंग की अपील ख़ारिज कर देने की मांग की और इसके लिए कई तर्क भी दिये. सुप्रीम कोर्ट ने दोनों पक्षों का मत सुनने के बाद तीन सदस्यों वाली डॉक्टरों की एक समिति बनायी और मीरा की मानसिक और शारीरिक हालत की सही रिपोर्ट पेश करने को कहा गया.

हालांकि कपिल को महीनों इंतज़ार करना पड़ा पर फ़ैसला उसके पक्ष में हुआ. चूंकि मीरा की मानसिक हालत नियंत्रण में है और उसकी शारीरिक हालत स्थिर है, न बिगड़ रही है न सुधर रही है... फिर भी डॉक्टरों के प्रयास जारी हैं और जीवन लौटने की एक उम्मीद की किरन अभी भी बाक़ी है लिहाजा कोर्ट दयामृत्यु की अपील ख़ारिज करता है. फ़ैसला सुनते ही कपिल के जैसे पंख उग आये. आनन-फानन में वह अस्पताल पहुंचा और मीरा के कंधे पकड़कर बोला — 'हम जीत गये, मीरा हम जीत गये... अब तुम्हें मुझसे कोई नहीं छीन सकता... मीरा... आई लव यू...' मीरा के होंठ भी फड़फड़ाये, शायद वो कहना चाह रही हो... आई लव यू टू...

अस्पताल में मीरा के कमरे की खिड़की के उस पार खड़े मीरा के पापा रो पड़े... शायद अपनी हार पर... पर हार किससे? सुप्रीम कोर्ट से या मीरा को अथाह प्यार करने वाले कपिल से?

संतोष कलमकर
५०५ सुरेंद्र रेज़िडेंसी
दाना पानी रेस्टारेंट के सामने,
बावड़ियांकलां,
भोपाल ४६२०३९ (म. प्र.)
मो.९७६९०२३१८८
Email : Kalamkar.santosh@gmail.com

बेड नं ९

वंदना शुक्ला

शिक्षा : बी. एस. सी., एम. ए. (हिंदी, संगीत), बी. एड.,

: लेखन :
पहली कहानी 'उड़ानों के सारांश' वागर्थ में प्रकाशित (२०१२), अभी तक हिंदी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां/लेख प्रकाशित. चार कथा-संग्रह, एक उपन्यास एवं एक कथेतर गद्य पर क़िताब प्रकाशित / एक उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य. कुछ कहानियों के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद तथा कुछ पुरस्कार.

: प्रकाशन :
पहली कहानी २०१२ में हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिका ''वागर्थ'' (कोलकाता) से प्रकाशित. तदुपरांत तद्भव, पहल, कथादेश, हंस, परिकथा, पाखी, आउट लुक, जनसत्ता, दैनिक भास्कर, आदि में कहानियां प्रकाशित. ''उड़ानों के सारांश'' एवं ''काफ़िला साथ और सफ़र तनहा'' दो कथा संग्रह तथा ''मगहर की सुबह'' उपन्यास प्रकाशित. एक कथा संग्रह शीघ्र प्रकाश्य.

: संप्रति :
शिक्षिका.

जब से डॉक्टरों ने एस. के. के जीने की हद तक़रीबन तय कर दी थी... इस वक़्त से चौबीस घंटे, चौबीस दिन या... कुछ और दिन तबसे उनके भीतर कई तरह की आवाज़ें उठने लगी थीं. कभी सिसकने जैसी, कभी सुबकने, कभी ठहाके, कभी मंत्रोच्चार, तो कभी असंख्य घंटियों के स्वर... कहीं ये आत्मा की आवाज़ तो नहीं जो अपना डेरा समेट रही थी या आत्मा के देह के घर से निकलने की अंतिम चीख़? जैसे बेटी जाती है अपनी देहरी छोड़कर दूसरी दुनिया में?

एस. के. अवस्थी यानी कि सुदामा किशन अवस्थी ने आंखें झप झपाकर गर्दन घुमायी. नीम बेहोशी की हालत में तो 'सब जग एक समान', पर होश में आने पर आई. सी. यू. का यही कमरा 'यातना शिविर' से कम नहीं लगता उन्हें. रात तो और भी खौफ़नाक. पूरे यूनिट के सन्नाटे के बीच धुंधली रोशनी में टहलती मौत की आहट, न जाने किसके पास खट से रुक जाये, और फक्क से किसी की ज़िंदगी का लट्टू बुझ जाये और उसके सामने लगे मॉनीटर पर लहराती हुई नदी–सी धड़कनें अनायास एक सीधी सिलेटी रेखा में जाकर डूब जायें. यायावरी और फ़ोटोग्राफ़ी के शौक़ीन एस. के. की आंखें हमेशा ख़ूबसूरत प्राकृतिक दृश्यों से भरी रहीं. कभी गोवा का समुद्र तट, कभी नैनीताल की झील पर बोटिंग का लुत्फ़, कभी मुंबई में खंडाला, कहीं हरे भरे लहलहाते खेत की मेढ़ और आकाश में पक्षियों की मदमस्त टोलियां... हज़ारों चित्र आंखों के कैमरों में खिंचे रहे. शासकीय महाविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर डॉक्टर एस. के. अवस्थी प्रकृति प्रेमी, शांत और प्रायः ख़ुश मिजाज़ इंसान जाने जाते रहे. इसके अतिरिक्त शौक़िया चित्रकारी का लुत्फ़ उठाना उनके जीवन जीने की प्रमुख शैली में से एक था, जिसकी जड़ बचपन और गांव के बीच में कहीं रही होगी. गांव में पैदा हुए. हरे भरे खेतों के बीच खेलते–कूदते बचपन बीता. संभवत: प्रकृति प्रेम का पाठ वहीं से सीखा उन्होंने. गांव में कोई अच्छा कॉलेज़ ना होना ही सबसे महत्वपूर्ण वजह थी, उनके सपरिवार कानपुर में आ बसने की. उसके बाद कॉलेज़ की पढ़ाई से लेकर नौकरी तक अब यहीं रह रहे हैं. यहां शहर में सर्व सुविधाओं और सम्मानजनक स्थिति में सपरिवार रहने के बावजूद वे गांव की आत्मीयता और प्रकृति की स्वछंदता को कभी नहीं भुला पाये. तमाम कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों के निर्वहन के बीच भी वो समय और अवसर निकाल लेते यायावरी का. कॉलेज़ की हर छुट्टियों में अपना 'ताम झाम' लेकर किसी पर्यटन

स्थल पर चले जाते. कभी अकेले, कभी पत्नी मालती के साथ. घंटों किसी नदी के किनारे, किसी चट्टान या कहीं पहाड़ पर बैठे प्राकृतिक दृश्यों को आंखों में भरते रहते स्केच और लैंडस्केप बनाते, संस्मरण लिखते और जब बहुत भावाकुल हो जाते तो पत्नी से कहते, 'मालू, प्रकृति से ख़ूबसूरत दुनिया की कोई चीज़ हो ही नहीं सकती. देखो कितनी शांत और हंसती खिलती हुई? पेड़–पत्तों, तितली, पशु पक्षियों, सूर्योदय, सूर्यास्त, मौसमों के रंग देखो सब अलग... पतझड़, बारिश, शरद, ग्रीष्म सबके रंग अलग छटा लिये हुए... है कहीं इतना व्यवस्थित चक्र और रंगों की विविधता मनुष्य निर्मित किसी चीज़ में?

पर पिछले कुछ दिनों से होश-बेहोशी के दरम्यान एक ऐसा दौर था जब उनकी आंखें सिर्फ़ काले सफ़ेद दृश्य ही देख पा रही थीं, ऐसा उन्हें प्रतीत हो रहा था. उल्टी–सीधी रेखाएं, आड़े-टेढ़े तिकोन, वृत्त, जलते-बुझते लट्टू की तरह कौंधते, चुंधियाई आंखों की वही आड़ी-तिरछी आकृतियां दृश्यों में तब्दील होती जातीं. हाथ में कोई चिकित्सीय औज़ार लिये निकट आती सफ़ेद झक्क कपड़ों में लिपटी वो काली सॉउथ इंडियन नर्स अनायास आंखों में धुंधली होती जाती और फिर एक गहरे शून्य में कहीं खो जाती, लेकिन पिछले लगभग चौबीस घंटों के बाद यह समय आया था जब एस. के. यूनिट में होने वाली गतिविधियों को ठीक से महसूस कर पा रहे थे और तभी सबसे पहले उन्होंने अपने बग़ल के बेड नंबर आठ के उस मरीज़ को देखा था, जो कल ही यहां बेहोश अवस्था में लाया गया था, पर रात होते-होते उसे होश आ गया था. उसे नर्सों ने कुछ खिलाया भी था. उसकी उम्र चालीस एक साल की रही होगी. पूरे होश में दोनों ही ना होने के बावजूद इतने जागृत थे कि एक दूसरे को देखकर हौले से मुस्कुरा सकें. उनके सन्नाटों के आसपास कुछ मौन शब्द उग आये थे जैसे... लेकिन आज फिर 'आठ नंबर' की तबियत बिगड़ गयी थी और इस वक़्त वो नर्सों और डॉक्टरों से घिरा हुआ था. एस. के. को महसूस हुआ कि सभी के चेहरों पर वो हड़बड़ाहट थी जो परसों, बेड नंबर पांच के मरीज़ के मरने से पहले आ गयी थी. एस. के. ने वहां से मुंह फेर आंखें बंद कर लीं.

उन्हें याद आया कि बचपन में मरने से कितना डरते थे वो. अजीब-सा तो अब भी लगता है उन्हें, जब किसी की मौत की ख़बर सुन लेते हैं. एक घुटन-सी होती है तब उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस ब्रम्हांड के खोल में उन्हें किसी ने जबरन बांध रखा हो और मरने वाला मुक्त हो गया हो इस खोल से. एस. के. ने करवट बदली, अचानक उन्हें लगा कि उनका गला सूख रहा है. पर नर्सें-डॉक्टर्स तो बेड नंबर आठ के उस मरते हुए आदमी को मौत के मुंह से खींच लाने की जुगत में लगे थे जिसे मौत अपने जबड़ों में दबोच वहां से भागने की फिराक में थी. उन्होंने इधर-उधर देखा. अन्य मरीज़, नि:स्पृह भाव से कोई सो रहा था किसी को नर्स खाना खिला रही थी, कोई दर्द से कराह रहा था और कुछ आस–पड़ोस के बेड वाले मरीज़ मित्र-शत्रु के प्रपंच से दूर विरक्त-भाव से आंखें मूंदे पड़े थे तटस्थ, इस निष्ठुर दुनियां और देह से त्रस्त अपनी बारी की प्रार्थना-सी करते. प्यास से एस. के. का गला तड़कने लगा था पर किसी की निग़ाह उन तक नहीं पहुंच रही थी और ना ही कान... क्योंकि उनके गले से 'पानी' की मरियल आवाज़ उनके ख़ुद के कानों तक भी नहीं आ रही थी, ऐसा लगा उन्हें कि वो किसी रेगिस्तानी टीले के ऊपर खड़े हैं सामने कुछ आकृतियां दिख रही हैं वो चीख़ रहें हैं पूरे दम से, एक बेदम आवाज़ के साथ, पर आकृतियों के न तो आंखें हैं न कान, पर हो सकता है उनके पास अपनी कोई नदी भी हो. पपड़ाए होठों पर जीभ फेरते हुए उन्हें सहसा याद आयी गांव की वो छत जहां फुफेरे चचेरे भाई सब एक साथ छत पर तारे देखते हुए तारों की कहानियां कहते सोया करते थे. वहीं बगल में लोहे की तिपाई के ऊपर पानी से भरा मिट्टी का घड़ा रखा रहता था, कि जब बच्चों को प्यास लगे पानी पी लें, पर एस. के. पड़े रहते आंखें खोले और उनकी प्यास भटकती रहती घड़े के इर्द-गिर्द... वो किसी 'प्यासे' के उठने की बाट जोहते रहते जो अभी उठकर घड़े में से डबुये से पानी भरेगा, और जैसे ही मुंह से लगायेगा, वो 'भैया मुझे भी दे दो पानी'... कहकर आंखें मीढ़ते हुए उठ बैठेंगे और पानी पीकर परम संतुष्टि के भाव से लेट जायेंगे, इस भरोसे और साहस के साथ कि अमुक 'भैया' जाग रहे हैं, उन्हें नींद आ जाती. ये आलस नहीं था, दरअसल बगल के पंजाबी की छत पर लगा वो बिजली का खंभा जिसके नीचे पंजाबी का बाप मरने के बाद रोज़ आकर बैठ जाता था और खंभे से टिका खैनी हथेलियों पे घिस फांकता रहता या बीड़ी पीता रहता... ये एक पौराणिक कहानी थी जिसे सुनकर एस. के. के पिता कैलाश नारायण अवस्थी भी

डरते-डरते ही बड़े हुए थे.

'अब पी सकते हो तुम पानी दक्षिण भारतीय काली. नर्स ने उनसे कहा ...' 'पानी चाहिए' दोहराते हुए उन्हें लगा जैसे शरीर के मरने से पहले उनकी आवाज़ मरने लगी है, तो क्या उनकी आत्मा आवाज़ के रस्ते निकल रही थी शरीर से धीरे–धीरे? उनकी पिंजर देह एक बार को कांप गयी. उन्हें याद आयी दादी की वो बात उन्होंने बताया था कि, '...जब आदमी मरता है तो आत्मा रस्ता ढूंढ़ती है निकलने का, कभी मुंह कभी आंखों के रस्ते. उन्हें याद है, उन्हीं दादी की आत्मा पक्का आंखों में से निकली थी क्योंकि उनकी आंखें बंद किये बिना उड़ गयी थी वो ना जाने कहां? दादी ने ही बूढ़े राक्षस की जान तोते में रखे होने की बात भी बतायी थी.

अचानक उन्हें लगने लगा कि शरीर पर काले–काले धब्बों में चींटियों के हुजूम उन्हें घसीटे ले जा रहे हैं और वो प्रतिरोध भी नहीं कर पा रहे.

नर्स बेड के पायताने लगी घिर्री को घुमा रही थी तो पलंग झूले–सा ऊपर उठने लगा, उसके संग संग एस. के. का सिर वाला ऊपरी हिस्सा भी उठ गया. नर्स ने पानी का कप एस. के. के मुंह से लगा दिया... कितना पानी पिया वो तो पता नहीं चला पर जितना गिरा होठों के सिरों से होते हुए गले को भिगाता कमीज़ तक एस. के. को उसका गीलापन भीतर तक भिगो गया. नर्स ने उन्हें बच्चों की तरह प्यार से डांटते हुए 'गिरा दिया ना कपड़ों पे पानी' कहा और अपने कंधे पर टंगे सफ़ेद छोटे टॉवेल से उनके गीले होठ पोंछने लगी. अम्मा सहसा खड़ी हो गयीं. पलंग के पास आकर मसालों की गंध से गंधाते पल्लू से उनका मुंह पोंछते हुए बोलीं, 'अरे लाला, इतके बड़े है गये पांच बरस के, पर पानी पीनो ना आयो तोये अबये लौं लारी लगानी पडेहे...' अम्मा झिड़की दे रही थीं. बालक बस हंस रहा था अम्मा की झिड़की पर और अम्मा को तो निहाल हो जाने का बहाना चाहिए, फ़कत. एस. के. के पपड़ाए होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट की लकीर खिंच गयी अब अम्मा के पास ही तो जाने वाले हैं वो? सहसा उन्हें अजीब अलौकिक-सी अनुभूति होने लगी.

अम्मा से मिलने की ख़ुशी. मालती भी तो मिलेगी वहीं... पर दुनिया, बब्बन, घर, नाती पोतों को छोड़कर कैसे जा सकते हैं वो विशेषत: बब्बन को सबसे छोटा बेटा... सबसे लाडला.

अभी तो रिटायरमेंट में भी ठीक तीन महीने बचे थे... कितनी योजनाएं बनाकर भविष्य के बक्से में रख ली थीं उन्होंने आंत के कैंसर का पता लगने के पहले. कार्यकाल के तीन महीने समाप्त होते ही उन्होंने अपना और बब्बन का गोवा का रिज़र्वेशन करा लिया था. उन्हें गोवा बहुत पसंद है इस बार बब्बन को भी ले जाने से बहुत उत्साहित थे वो. अच्छी भली किसी सुपरफ़ास्ट ट्रेन की रफ़्तार से चलती ज़िंदगी में अचानक इस बीमारी ने ब्रेक दबा दिया था जैसे, और दौड़ती हुई ट्रेन जोरदार झटके के साथ जहां की तहां रुक गयी थी. चारों ओर जंगल ही जंगल वीरान... और कुछ नहीं... बस वो और बब्बन!

दीवार घड़ी पर निग़ाह पडी... रात के सवा बारह बजे थे. सामने की बड़ी मेज़ के पास दो नर्सें फ़ाइलों में सिर घुसाये हुए बैठी थीं. वे उनींदी थीं और बार–बार जम्हाई ले रही थीं. कुछ नर्सें किसी मरीज़ का ब्लड प्रेशर, बुखार आदि चेक कर रही थीं. डॉक्टरों नर्सों की हल्की-सी पदचाप के अलावा यहां डरावनी शांति बिखरी हुई थी. एस. के. को लग रहा था कि वो आज अध-होश में नहीं बल्कि पूरी तरह सचेत हैं, और इस दमघोंटू वातावरण के बीच भी ख़ुशी में लिपटी आशा की एक महीन–सी रेखा उनके होठों पर तैर गयी थी. काश दो साल वाली डॉक्टर मनीष की बात सच हो जाये... दो साल का क़िस्सा ये है कि एक दिन एस. के. को यूं ही ख़ुश देख राउंड लेने आये डॉक्टर मनीष ने कहा था. 'गुड... इसी तरह हंसते रहो देखो पॉज़िटिव सोचोगे तो दो साल या उससे ज़्यादा भी जी सकते हो नथिंग इज़ इम्पोसिबल...' तब एस. के. को भी लगा था कि तब तक तो दुनियां जीत लेंगे वो. दो घंटे जीने की आशा वाले आदमी को यदि दो साल मिल जायें तो? पर तभी उनके सामने बब्बन की याद चिंता बनकर आ खड़ी हुई. वो विचलित हो उठे बब्बन, जो बग़ल वाले हॉल में 'आई. सी. यू.' में भरती मरीज़ों के रिश्तेदारों के साथ सो रहा होगा... नहीं शायद जाग रहा होगा... या शायद उन रिश्तेदारों के साथ उनके मरने की प्रतीक्षा कर रहा होगा. चिंता की कई नोकें निकल आयी थीं.

बब्बन सबसे छोटा बीस बरस का है दोनों बेटों और बेटी से छोटा और सबसे संवेदनशील. दोनों बेटे तो अपने परिवारों के साथ विदेश में हैं लड़की कलकत्ते में. आकर देख भी गये हैं बाप को, सिर पर हाथ फेरकर 'पापा किसी

बात की फ़िक्र मत करना जितने पैसों की ज़रूरत हो बताना.' दो एक हफ़्ते रहकर अपने–अपने कर्तव्य निभा वापस अपने-अपने घर चले गये हैं. किसी को नौकरी से छुट्टी नहीं थी, किसी के बच्चों के एग्ज़ाम्स थे. सही तो है... कोई रहे भी तो कितना? काम ही ख़त्म हो गया होता तो सब 'निपटा निपटू' के निश्चिंत हो चले जाते पर कितना इंतज़ार करे भला कोई मौत का... मौत की कोई डेड लाइन होती है क्या?

एस. के. की आंखों के आगे अंधेरा-सा छाने लगा... बब्बन के बारे में जब भी सोचते हैं वो ऐसा ही अंधेरा घिर जाता है आंखों में. पत्नी मालती तो तीन बरस पहले सबकी ज़िम्मेदारी एस. के. के सिर छोड़कर चली गयी गैर ज़िम्मेदारों की तरह दुनिया से. वो और बब्बन ही तो रह गये अकेले डेढ़ अरब के इस देश में एक दूसरे का आसरा.

आज से बीस दिन पहले फ़िफ्टी फ़िफ्टी परसेंट जीने-मरने की उम्मीद के साथ किये गये ऑपरेशन के वक़्त एस. के. की नज़रें ऑपरेशन थियेटर में स्ट्रेचर पर जाते वक़्त उदास, रुआंसे कोने में खड़े बब्बन पर ठहर गयी थीं जो उन्हें ऑपरेशन थियेटर में घुसते हुए बाहर खड़ा निरीह नज़रों से देख रहा था. अचानक एस. के. की आंखें लौटते हुए बब्बन की पीठ में चिप की तरह धंस गयी थीं और वो स्पष्ट देख और सुन पा रहे थे उस डॉक्टर को जो बब्बन को दसवीं मंज़िल के उस प्राईवेट रूम में जाने की हिदायत दे रहा था और ना जाने के संकट भी गिना रहा था. 'यू कांट सिट हेअर बॉय, यू विल हेव टू गो टू यौर प्राइवेट रूम... ऑन टेंथ फ़्लोर... ऑपरेशन के दौरान कोई इमरज़ेंसी होती है तो हम काल कर देंगे नर्सेज़ रूम में... तब तुम आ जाना...!' बब्बन के साथ एस. के. की आंखें भी लिफ़्ट से दसवें फ़्लोर पर आ गयी थीं. बब्बन पहले से रिज़र्व्ड प्राइवेट रूम में ना जाकर नर्सों के कमरे की बाहर वाली काली पुती बेंच पर निढाल सा बैठ गया. उसे नहीं मालूम कि कैसे उसकी न जाने कितने दिनों की जगार वाली आंखों में झपकी लग गयी थी, गहरा सुकून मिला उसे अरसे बाद. पर नींद जल्दी ही उचट गयी.

बावजूद ख़ुद को फ्रेश महसूस करने के उसे आश्चर्य हो रहा था कि इतने दिन की जगार के बाद आज ऐन ऑपरेशन के वक़्त उसकी झपकी कैसे लग गयी...?

वह बैठा था ठीक सामने हंसती-मुस्कुराती चुहल करती नर्सों के कमरे के आगे. उसने घड़ी देखी और अंदाज़ लगाया, ऑपरेशन को पांच घंटे पूरे होने वाले थे.

यही अवधि तो दी थी डॉक्टरों ने ऑपरेशन पूरे हो जाने की, लेकिन जब समय पांच घंटे की पूर्व घोषित अवधि से आगे सरकने लगा तो बब्बन की धड़कनें बढ़ने लगीं. इस बीच दो बार वो नर्सों से 'कोई मैसेज़ आने' की बात पूछ आया था, उनमें से एक नर्स ने बातचीत की लड़ टूट जाने पर खीजते हुए से उत्तर दिया था — 'अरे बाबा ऑपरेशन थियेटर से कोई काल आयेगा तो बताएगी ना काहे को हलाकान होता है रे...' और फिर बातचीत में मशगूल हो गयी थीं. वो अपनी तमाम दुश्चिंताओं, आशंकाओं को विवशता की पोटली में समेट फिर बैठ गया था उस बेंच पर. अब 'इमरज़ेंसी' की घंटी की प्रतीक्षा करने के अलावा उसके पास कोई उपाय नहीं बचा था. अतिरिक्त के दो घंटे, 'बाद' के इंतज़ामों की उधेड़ बुन में बीते थे उसके. सब जानते थे, कि ऑपरेशन मरते मरीज़ को आख़िरी दम तक बचाने की एक कोशिश भर था. कामियाब या नाकामियाब, सब क़िस्मत की पोटली में बंद... ज़िंदगी और मौत की छिपा-छाई चल रही थी. कभी मौत जीवन के आगे कभी जीवन आगे मौत पीछे... परिणाम तो सब जानते थे... पर ऑपरेशन सक्सेसफ़ुल होते ही मौत काली बिल्ली की तरह कोने में फिर घात लगाकर बैठ गयी थी... दो क़दम पीछे जाकर. हालांकि एस. के. को उस ऑपरेशन के बाद अस्पताल से छुट्टी नहीं मिली थी, लेकिन इतने दिन आई. सी. यू. के 'मृत्यु शिविर' में रहने के बाद प्राइवेट वॉर्ड में शिफ़्ट होना उनके लिए ख़्वाब से कम ना था. अपने 'घर' वापस लौट आने की नाउम्मीदी के बाद वापस लौट आने जैसा. बाप बेटे ने कितने दिनों बाद एक दूसरे को मुस्कुराते हुए देखा था. बिना कुछ कहे दोनों मुस्कुराते रहे थे एक दूसरे को देखकर. बेटे को सीने से लगाने का मन होने लगा था एस. के. का. पिछले एक महीने में अचानक कितना बड़ा हो गया था बब्बन? दोनों के चेहरों पर एक अप्रत्याशित जीत की नि:शब्द ख़ुशी खिल गयी थी लेकिन ख़ुशी ज़्यादा दिन नहीं टिकी. हमेशा की तरह बस बहलाकर तब चली गयी जब दुबारा एस. के. की तबीयत बिगड़ गयी और फिर से उन्हें आई. सी. यू. में भरती करना पड़ा. डॉक्टर सुबह शाम रॉउंड पर आते, 'हौसला रखो... ज़िंदगी उम्मीद का नाम ही है' कंधे पर हाथ रख, रटे रटाये शब्दों का एक फीका-सा नाउम्मीद हौसला देकर अपनी ड्यूटी का एक हिस्सा पूरा करते.

फिर बब्बन की याद उन्हें कचोटने लगी. याद जो अब चिंता बनकर सताने लगती थी चाहे जब... वैसे भी बस दिन में एक या दो बार बब्बन का चेहरा देख पाते वो, वो

भी सिर्फ़ दो तीन मिनिट के लिए, इससे ज़्यादा आई सी यू में रुकने की किसी भी विज़िटर को अनुमति नहीं थी. व्यक्ति के अंतिम कुछ इने-गिने पलों में उनके अपनों से मिलने की यह समय सीमा उन्हें बहुत खलती. आज सुबह बब्बन आया क्यूं नहीं? कहीं बीमार तो नहीं? आंखों के आगे फिर अंधेरे घिरने लगे.

उन्हें लगा कि कॉरिडोर में वे अपने पैरों पर नहीं चल रहे बल्कि हवा में उड़ रहे हैं.

आंखें ज्यूं-ज्यूं मिंच रही थीं उनका शरीर वैसे-वैसे ऊपर उठ रहा था... नहीं ऊपर नहीं शायद पलंग पर बैठ गया था पैर लटकाकर. ...अब वो उतर रहा था धीरे-धीरे बिस्तर से. नर्सें डॉक्टर अपनी-अपनी ड्यूटी में व्यस्त थे. नंगे पैर ही वो आहिस्ता-आहिस्ता पैर के बल देह घसीटते हुए बग़ल के कमरे की ओर जा रहे थे. उनकी जीर्णकाय देह जैसे धरती पर लहराती ख़ुद-ब-ख़ुद चली जा रही थी जतन-हीन...

कुछ भी हो कम से कम व्हील चेयर की परतंत्रता से मुक्ति तो मिली, यही सोच कर वो ख़ुश थे. कितने दिन बाद याद नहीं पर अब वो अपने ख़ुद के पैरों पर बग़ल के कमरे के सामने खड़े थे जिसके ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में 'आई. सी. यू. विज़िटर्स रूम' लिखा हुआ था. वे उसके अधबंद दरवाज़े के सामने जाकर रुक गये.

विज़िटर्स रूम में हल्की पीली रोशनी फैली हुई थी. उसी रोशनी के नीचे एक लाइन में बिछी दस बेंचों जिन पर गद्देदार हरी रेग्ज़ीन बिछी थी पर आई. सी. यू. में भरती मरीज़ों का एक-एक रिश्तेदार कोई लेटा, कोई बैठा कोई आपस में बातें कर रहा था. पूरे कमरे में एक चीख़ती हुई उदासी पसरी थी. बल्ब की बीमार रोशनी में कुछ मानव आकृतियां सुस्त सी इधर-उधर घूम रही थीं. पीली मटमैली दीवार पर टंगी पुरानी घड़ी के पेंडुलम की खट-खट जैसे मौत के साथ क़दमताल कर रही थी. न जाने कितनी मौन चीख़ों की गवाह... पर द्वार पर खड़े एस. के. की निगाहें उनमें बब्बन को खोज रही थीं. वे दरवाज़े पर खड़े हो धुंधलाई रोशनी और डूबती निग़ाहों से हर बेंच का मुआयना कर रहे थे. अचानक उनकी नज़र अंतिम से दूसरी बेंच पर पड़ी जिस पर बड़े आकार में बेड नंबर ९ लिखा हुआ था.

एस. के. को याद आया आई सी यू में उनका बेड नंबर भी तो नौ ही है. उसी बेड नंबर नौ के ठीक नीचे वाली बेंच पर रोशनी का एक चौकोर टुकड़ा पसरा था जिसके बीच में एक धुंधली-सी दुबली पतली आकृति ठुड्डी पे हाथ रखकर सिमटी हुई-सी बैठी हुई थी. एस. के. धीरे-धीरे घिसटते हुए बेड नंबर नौ तक पहुंच गये.

वो उनका बेटा बब्बन ही था. वो बब्बन की बगल में बैठ गये, इतने निकट कि उसकी उदासी और चिंता की सांसें एस. के. के ज़िस्म में उतरने लगीं. कमरे में उस पीले लट्टू की धुंधली-सी रोशनी थी जो बब्बन के सामने वाली बड़ी दीवार पर उदास विरक्त-सा जल रहा था. जिसके ऊपर एक हरी बत्ती भी लगी थी जो अनायास सायरन में तब्दील हो जाता... जब भी माईक से भयानक सी आवाज़ तैरती 'बेड नंबर फलां फलां के रिलेटिव प्लीज़ आई. सी. यू. में आयें... इमरजेंसी कॉलिंग...' उसके साथ ही वो हरी बत्ती बहराई-सी जलने-बुझने लगती और उस बेड नंबर का संबंधी आई. सी. यू. की तरफ़ बदहवास-सा दौड़ता.

कुछ देर एस. के. उदास और पनीली आंखों से बब्बन के मुरझाये दुबले चेहरे को देखते रहे. कहना चाहते थे कि आदमी की ज़िंदगी तो आनी-जानी ही है बेटा... आज नहीं तो कल सभी को प्रस्थान करना ही है इस झूठे संसार से, इसलिए दुखी मत हो. बब्बन बिलकुल अकेला रह गया है. उसे जीवन का कोई अनुभव भी नहीं. इसलिए एस. के. बेटे से पूछना चाहते थे कि पी. एफ़. लोन का कितना पैसा ख़त्म हो गया, कितना बचा है? पिछले कुछ दिनों से वे दोनों ही तो घर का हिसाब क़िताब रखते थे, पर बब्बन अभी भी कच्चा और लापरवाह था हिसाब-क़िताब में. इस बात पर कभी-कभी नाराज़ भी होते एस. के. यह भी पूछना चाहते बेटे से, कि तुमने आगे की कुछ व्यवस्थाएं सोची हैं क्या? तुम्हारी नयी-नयी नौकरी मेरी बीमारी की बलि तो नहीं चढ़ गयी? पर... तभी हरी लाइट के साथ सायरन चीख़ने लगा 'बेड नंबर नौ के रिश्तेदार के लिए इमरज़ेंसी कॉलिंग... प्लीज़ कम इमीजियेटली इन द आई सी यू...' बब्बन की दुबली-पतली काया में अचानक भूचाल आ गया... वह बदहवास दौड़ता हुआ वहां से चला गया! वहां उपस्थित अन्य लोगों के अंदेशों को चीरता हुआ. एस. के. अब भी वहां बैठे थे नि:स्पृह, तटस्थ, निरीह और हारे हुए.

ए-३, श्रीजी पार्क सोसायटी,
आशीर्वाद सोसायटी के पास,
वारसिया रिंग रोड,
वडोदरा (गुज.)
मो. : ९९२८८३१५११.

सुंदरबन की अनूठी कथा

(गतांक से आगे....)

डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

सिराजुल समझ गया - कहीं से उसकी मुक्ति नहीं है !

दूसरे दिन उसी तरह सिराजुल चुपचाप मछली लेकर बैठा था. वे दोनों पेड़ पर चढ़ गये थे. घंटा भर भी नहीं बीता कि पेड़ों के पीछे सूखी पत्तियों पर एक सरसराहट की आवाज़ हुई. झुरमुट के बीच से बड़े-बड़े जुगनुओं की तरह कुछ ऊंचाई पर दो और थोड़ी नीचे छह आंखें चमकने लगीं. वे सामने आ गये. सिराजुल उदास था. फिर भी कांपते हाथों से उसने बच्चों के सामने मछलियां फेंक दीं.

पेड़ पर बैठा काबुल शेख सारा माजरा देख कर दंग रह गया. मि. लश्कर की भी सांस रुक गयी.

वह शुक्ल पक्ष की एकादशी या द्वादशी की रात थी. दो चार दिन बाद अपने सारे नूर के साथ दमकता हुआ चांद अपना पूरा चेहरा दिखलायेगा. जैसे बंगालियों की शादी में वर-वधू के एक दूसरे को देखने यानी 'शुभ दृष्टि' के पहले दुलहन एक पान के पत्ते से मुंह ढके रहती है, उसी तरह चांद भी मानो कह रहा है - जरा धीरज धरो. फिर देख लेना मेरे जलवे को. और इस दूधिया रोशनी में बच्चे मछलियों के लिए छीना झपटी कर रहे थे. दुर्गा उनके पास आकर खड़ी हो गयी. सिराजुल की तरफ़ चमकती आंखों से उसने देखा. आज सिराजुल नज़र झुकाये बैठा रहा. फिर एक छलांग लगाकर दुर्गा बीहड़ में घुस गयी.

उसके जाने की आवाज़ मद्धिम पड़ते हुए ज्यों वन में विलीन हो गयी वे दोनों चुपके से नीचे उतर आये. नृसिंह ने सिराजुल के कान में धीरे से कहा,''जाओ, एक को पकड़ लो.''

''मैं?'' सिराजुल चौंक उठा.

''हां, तुझे वे कुछ नहीं कहेंगे. बस एक को यहां तक लेते आ.''

सिराजुल उठा. एक मछली का लालच देते हुए एक बच्चे को और दोनों से अलग कर लिया. वे दोनों मछली चबाते रहे. काबुल के हाथ में एक बड़ा–सा बोरा था. ज्यों वह बच्चा सिराजुल के पास आ गया, वह खड़ा हो गया कि ऊपर से बोरा फेंक कर उस बच्चे को लपेट ले. और तभी -

सामने झाड़ियों के पास आंख पड़ते ही उसके हाथ को मानो लकवा मार गया.

तीनों को पता भी न चला था कि कब दुर्गा लौट आयी थी. उसकी दो जलती हुई आंखें इन्हें देख रही थीं.

सिराजुल को लगा — उन आंखों में धिक्कार का एक ही शब्द बिंबित हो रहा है — बेईमान!

इतने में नृसिंह ने तड़ाक से रायफल उठा ली.

''नही. गोली मत चलाना.'' सिराजुल ने लपक कर बंदूक की नली को घुमाने की कोशिश की, मगर तब तक गोली चल चुकी... एक आवाज़... डालों पर बैठे पक्षियों का पंख फड़फड़ाना... और...

और उसी पल दुर्गा ने मि. लश्कर की ओर एक छलांग लगायी. उसके एक ही पंजे से नृसिंह का चेहरा लहूलुहान हो गया. उसके हाथ से बंदूक गिर गयी. काबुल पेड़ों के पीछे से भाग निकला. दुर्गा ने लश्कर के टेंटुए को ऐसे दबाया कि उस जल्लाद ने तड़पते हुए वहीं दम तोड़ दिया.

तब कहीं दुर्गा ने उसे छोड़ा और अब वह सिराजुल के पास आकर खड़ी हो गयी. लश्कर की गोली सिराजुल के सीने को पार कर गयी थी. दुर्गा को बचाने में वह वहीं ढेर हो गया था. उसकी कमीज़ धीरे-धीरे लाल हो रही थी. तीनों बच्चे दहशत भरी निग़ाहों से दूर खड़े अपनी मां को बुला रहे थे. दुर्गा वहीं सिराजुल के पास बैठ गयी. उसके दोनों हाथ सिराजुल की छाती पर थे. उसकी निग़ाहों में जाने क्या था. वह बस अपनी जुबान से सिराजुल के चेहरे को चाट रही थी.

दूसरे दिन सुबह जब हाड़भांगा के लोग लाठी और बांस वगैरह लेकर इन्हें तलाशते हुए बीहड़ जंगल के अंदर तक आये तो सामने का दृश्य देखकर वे दंग रह गये. दुर्गा ने लश्कर के शरीर को अपने दांत से क्षत-विक्षत कर रखा था. मगर सिराजुल की लाश जस की तस पड़ी थी. सिर्फ़ उसकी कमीज़ लाल हो गयी थी.

लोगों को देखते ही दुर्गा अपने बच्चों को लेकर धीरे-धीरे जंगल के अंदर घुस गयी.

आज भी हाड़भांगा के कई लोग कसम खाकर कहते हैं कि जाते समय उस बाघिन की आंखें नम थीं...

सी २६/३५-४०ए, रामकटोरा, वाराणसी २२१००१.
फो.०५४२/२२०४५०४ मो.(०)९४५५१६८३५९

फ़ैसला

चंदभान 'राही'

एम. ए. हिंदी साहित्य,
एल. एल. एम. विधि

: लेखन विधा :
कहानी एवं उपन्यास

: विषय :
सामाजिक, समसामायिक एवं तिलिस्म.
उल्लेखनीय कार्य : 'मायानगरी का सम्राट' तिलिस्मी उपन्यास का लेखन.

: अन्य गतिविधियां :
न्यू भूमिका साहित्य एवं सांस्कृतिक संस्था भोपाल का साहित्य गतिविधियों के लिए संचालन त्रैमासिक पत्रिका 'अमृत दर्पण' का संपादन.

: सम्मानः
म. प्र. साहित्य अकादमी भोपाल द्वारा वर्ष २०१७ में कहानी संग्रह 'पुल के पास' के लिए सम्मानित.

: संप्रति :
म. प्र. शासन सेवारत.

आज ३० जनवरी थी. मुझे पेशी के लिए कचहरी जाना था. मैं सुबह से ही कचहरी जाने के लिए तैयार था. बस मुझे मेरे मित्र रामेश्वर का इंतज़ार था. सुबह के नौ बज चुके थे पर वह अभी तक नहीं आया था, जबकि वह कहकर गया था कि मैं कल ठीक नौ बजे तुम्हारे घर आ जाऊंगा. मैं चिंता में डूबा जा रहा था कि क्या बात है जो वह अभी तक आया नहीं.

आज से ठीक एक साल पहले मैंने अपनी लड़की की शादी के लिए महाजन के हाथों अपने खेत को रेहन रखा था. मैंने स्पष्ट कहा था कि दस माह बाद मैं ज़मीन छुड़वा लूंगा लेकिन महाजन की नीयत ठीक न थी. उसने खेत देने से इंकार कर दिया जिसके कारण मुझे मज़बूरन पुलिस में रपट लिखवानी पड़ी. जब से अब तक कचहरी के चक्कर काट रहे हैं. लेकिन वहां भी ऐसे ही आना-कानी कर रहे हैं.

कचहरी के चपरासी को पांच रुपए देना होता है फिर बाबू को दस रुपए देने के बाद फ़ाइल जज साहब के पास पहुंचती है लेकिन उस फ़ाइल में मेरे हस्ताक्षर ले लेते हैं और अगली तारीख़ दे देते हैं.

पिछली तारीख़ में जज साहब ने कह दिया था कि राजाराम, अगली तारीख़ में अपने साथ अपना गवाह लेकर आना. रामेश्वर मेरे ही गांव का आदमी था. उसको मेरी पूरी व्यथा-कथा मालूम थी. इसलिए वह मेरी तरफ़ से कचहरी में गवाही दे रहा था.

वकील साहब ने कह दिया था कि राजाराम, अबकी बार तुम जरा जल्दी आना. तुम्हारा केस पुराना है. इसलिए जल्दी नंबर आ जाएगा. लेकिन रामेश्वर का अभी तक कहीं पता नहीं.

दीनानाथ हल कांधे पर रखे बैलों को हांकते हुए मेरे बाजू से चले गये लेकिन मुझसे राम-राम, श्याम-श्याम तक नहीं किया. एक बार की बात है कि जब दीनानाथ का एक बैल मर गया था तब मेरे बैल से ही तो उसने अपना खेत जोता था और जब मैंने कहा कि कचहरी में चलकर गवाही दे दो तो कहने लगा — ''मैं महाजन से बैर नहीं ले सकता और भइया, हमें तो कोर्ट-कचहरी से दूर ही रखो तो ज़्यादा अच्छा है.''

मुझे लगा कि आज किसी ने मेरी छाती में कटार उतार दी. क्या करता,

महाजन के पास दीनानाथ का चार एकड़ खेत भी तो रेहन रखा था. तो दीनानाथ महाजन के ख़िलाफ़ कैसे गवाही देता. मुझे याद है — मैं मन उदास किये घर आ रहा था तभी रामेश्वर अपनी बैलगाड़ी को लेकर शहर से आ रहा था कि रास्ते में ही वह मुझे मिला. अबकी बार उसके खेत में गन्ना अच्छा हुआ था जिस कारण उसके पास छह-सात एकड़ ज़मीन थी इसलिए उसको किसी के पास कोई चीज़ रेहन रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी. बल्कि रामेश्वर ख़ुद दूसरों की चीज़ें रेहन रखता और लोगों की मदद करता था. रास्ते में मुझे देखकर गाड़ी रोक कर पूछा — ''अरे भाई राजाराम, कहां से आ रहे हो?''

मैं मौन रहा, सिर्फ़ स्वीकारात्मक ढंग की स्थिति में सिर हिलाकर कह दिया कि ''इधर से ही आ रहा हूं.'' इसी बीच शायद मेरे मन में वह झांक चुका था.

रामेश्वर मेरे ही साथ का पढ़ा-लिखा था. लेकिन रामेश्वर के पिता ने उसे गांव से शहर भेज दिया था पढ़ने के लिए और मैं पिता के गुज़र जाने के बाद से ही काम करने लगा, ठाकुर साहब के घर पर.

इसी बीच मेरी शादी रामपुर में अपनी ही जात की लड़की से हो गयी. आज एक लड़का और दो लड़कियां हैं.

रामेश्वर ने बैलों की नाथ खींच ली और बैल रुक गये. बैलगाड़ी के रुकते ही रामेश्वर नीचे उतरा, गले में हाथ डालते हुए बोला — ''तुम मुझे कुछ परेशान नज़र आ रहे हो, क्या बात है? क्या हमको नहीं बताओगे?''

''क्या बताऊं भइया...'' मैं मन छोटा करते हुए बोला.

''क्या हमको तुम अपना नहीं समझते हो?'' अपने अंगोछे से मुंह पोंछते हुए रामेश्वर ने पूछा.

अपने कुर्ते की जेब में से बीड़ी-माचिस निकालकर सुलगाने लगा. जबकि डॉक्टर बाबू ने रामेश्वर को पिछले हफ़्ते ही बीड़ी पीने के लिए मना कर दिया था और साफ़ कह दिया था कि आपके स्वास्थ्य के लिए यह हानिकारक है. अच्छा यही होगा कि आप बीड़ी पीना बंद कर दें. लेकिन रामेश्वर को डॉक्टर बाबू की बात का कोई असर नहीं हुआ था. मैंने भी बहुत समझाया कि भइया, बीड़ी पीना ठीक नहीं, रात-भर खांसते रहते हो और तबीयत भी ठीक नहीं रहती. तो हंसकर सिर्फ़ इतना ही कहता है —

''राजारामजी, मरना तो निश्चित ही है.''

मैं कुछ संकोच कर रहा था बोलने में, सोच रहा था कि क्या कहेगा रामेश्वर. क्या सोचेगा और कहीं इसने भी मना कर दिया तो, फिर और भी बुरा होगा. नहीं... नहीं... मुझे रामेश्वर से कुछ नहीं कहना चाहिए. लेकिन रामेश्वर को शायद चेहरा पढ़ना आता था, तुरंत ही बोल पड़ा, ''राजारामजी, बिल्कुल भी संकोच न कीजिए. जो भी बात हो, बेहिचक बोलिए. मेरा विश्वास कीजिए. अगर मेरे लायक कोई काम होगा तो सोचिए कि पूरा ही हुआ.''

मुझे लगा कि मैं अभी तक ग़लत सोच रहा था. कुछ हिम्मत जुटाकर बोला, ''भइया, ३० जनवरी को कचहरी जाना है और पिछली बार जज साहब ने साफ़ कह दिया था कि अगली बार गवाह लेकर आना. तो भइया दीनानाथ जी के पास गया था. उन्होंने तो गवाही देने से मना कर दिया है. तबसे कुछ सूझ ही नहीं रहा है, क्या करूं. बड़ी उम्मीद थी मुझे दीनानाथ से जिसने पानी फेर दिया.''

रामेश्वर बीड़ी का आख़िरी कश खींचता रहा, धुआं उगलता रहा. थोड़ी देर बाद बीड़ी को पैरों के नीचे रौंदकर बुझा दिया और बोला, ''ये वही महाजन वाले केस की बात है न.''

मैंने ''हां'' में सिर हिला दिया.

''अरे, हम चलेंगे तुम्हारे साथ ३० जनवरी को.''

मैं चकित होकर रामेश्वर का चेहरा देखता रहा. मेरा मुरझाया मन एकदम से खिल गया. ऐसा लगा मानो किसी ने प्यासे को पानी पिला दिया हो. मुझे विश्वास तो नहीं हुआ क्योंकि रामेश्वर से मेरा वास्ता ही बहुत कम पड़ता था. वैसे भी दुआ-सलाम तक ही सीमित था. लेकिन आज मुझे लगा कि मैं बहुत अंधेरे में था. मुझे क्या मालूम कि रामेश्वर इतना नेकदिल इंसान है.

''तभी मेरी पीठ ठोंकता हुआ बोला था — ''राजारामजी, ३० जनवरी को नौ बजे तुम्हारे घर पर आ जाऊंगा, फिर साथ ही चलेंगे. आओ, गाड़ी में बैठो. घर चलते हैं.''

□

आज जबकि घड़ी में ठीक नौ बज गये हैं फिर भी वह अभी तक नहीं आया. न ही कोई ख़बर आयी. न यह पता है कि वह कहां है. न जाने कैसे-कैसे विचार मन में आ रहे थे. कभी ऐसा लगता कि कहीं मेरा मन रखने के लिए तो नहीं कहा था उसने. फिर कहीं मज़ाक तो नहीं कर रहा था. नहीं... नहीं... ऐसा वह क्यों करने लगा. जैसे-जैसे घड़ी की सुई आगे आगे बढ़ती जाती मेरा मन और भी शंकाओं से भरता जाता. कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था. कल ही शाम को बारिश भी ख़ूब हुई थी. जिससे चारों तरफ़ का

वातावरण साफ़-सुथरा नज़र आ रहा था. ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कि धरती को किसी ने मल-मलकर नहला दिया हो और फिर हरे रंग की चादर ओढ़ा दी हो.

सुबह का समय था. घर के सामने ही चारपाई पर बैठा रामेश्वर के इंतज़ार में कभी घड़ी को देखता, कभी सूरज को तो कभी ख़ुद ही उठकर थोड़ी दूर जाकर रास्ता ताक आता. तभी दूर बैलों के गले की घंटी बजने की ध्वनि मेरे कानों को सुनायी दी. मुझे लगा कोई आ रहा है. कुछ देर बाद देखा तो रामेश्वर अपने बैलों को गाड़ी में नाथ कर मेरी तरफ़ चला आ रहा था. कुछ और क़रीब आया तो मैंने ग़ौर से देखा. रामेश्वर के हाथ-पैर कीचड़ में सने थे. उसके कपड़े पूरे मिट्टी में मिले हुए थे. उसको देखकर मेरा मन घबराने लगा. गाड़ी को रोककर रामेश्वर उतरा और चारपाई पर बैठ गया. मैंने देर होने का कारण पूछा तो उसने कहा — ''परसों मगरू को मिट्टी की ज़रूरत थी तो वह रास्ते के किनारे की मिट्टी ही खोद ले गया. वहां अच्छा-खासा गड्ढा हो गया है और कल ही पानी गिर गया. पानी से वो गड्ढा भर गया. अभी आते वक़्त गाड़ी उसी गड्ढे में फंस गयी तो गाड़ी को निकालने में मुझे देर हो गयी, नहीं तो मैं निकला तो ठीक समय पर था.''

मैंने राहत की सांस ली और भगवान से दुआ करने लगा. अंदर से श्रीमतीजी ने पानी लाकर दिया. गुड़ से मुंह मीठा कर पानी पिया. फिर तुरंत ही बोल पड़ा — ''राजारामजी, समय कम है जल्दी कचहरी पहुंचना चाहिए.''

मुझे उसकी बात सही लगी ओर मैंने अंदर से अपना अंगोछा उठाया, कुछ रुपए अपनी अंटी में बांधे और कुर्ता ठीक करता हुआ बाहर आ गया. रामेश्वर बैलों की रस्सी पकड़कर बैठ गया और मैं पीछे.

काफ़ी देर तक चलते रहने के बाद हम कचहरी पहुंचे. कचहरी का प्रांगण आदमियों से खचाखच भरा हुआ था. ऐसा लग रहा था मानो कोई मेला लगा हो. रामेश्वर गाड़ी से बैलों को अलग करने के बाद बोला, ''कोई वकील वग़ैरह किया है या नहीं?''

''हां,'' मैंने कहा — ''यादवजी हैं न, जो रामपुर में रहते हैं, उन्हीं को अपना वकील बनाया है.''

हम दोनों रामलाल यादवजी को ढूंढ़ने लगे. ज़्यादा समय नहीं लगा. उनके साथ रहने वाले दलाल से पता चला कि वकील साहब एक केस को देखने गये हैं, आते ही होंगे.

हमारे सामने खाली बेंच पड़ी थी. हम दोनों उस पर बैठ गये. रामेश्वर ने मुझसे कहा — ''महाजनजी भी तो आये होंगे?''

''हमें तो पता नहीं, हां, आना तो चाहिए. अभी हम बात कर ही रहे थे कि सामने से धोती-कुर्ता पहने, हाथ में छड़ी लिए अपनी टोपी सीधी करते, महाजनजी आते दिखायी दिए. मैंने रामेश्वर से कहा — ''देखो, सामने महाजनजी आ रहे हैं.''

महाजनजी न आगे देख रहे थे न पीछे, तेज़ क़दमों से चलते हुए चले आ रहे थे. तभी रामेश्वर बीच रास्ते में खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर महाजनजी से नमस्कार किया. महाजनजी रुके और एक सरसरी नज़र ऊपर से नीचे तक दौड़ायी. फिर एक नज़र मुझ पर डाली, कुछ सोचने लगे. शायद सोच रहे थे कि रामेश्वर मेरी तरफ़ से गवाही दे रहा है. क्योंकि उन्होंने कहा था कि इस गांव में ऐसा कोई भी आदमी नहीं जिसकी कुछ-न-कुछ चीज़ मेरे पास रेहन न रखी हो. इसीलिए कोई भी मेरे ख़िलाफ़ गवाही देने की हिम्मत नहीं करेगा. महाजन का कहना भी सही था. रामेश्वर दूसरे गांव का व्यक्ति था. उसके पास पुरखों की छोड़ी हुई ज़मीन-जायदाद थी.

''अभी भी समय है महाजनजी, समझौता कर लीजिए.'' रामेश्वर ने महाजन से कहा.

''नहीं, अब तो कचहरी का फ़ैसला ही माना जायेगा.''

''लेकिन महाजनजी, आप राजारामजी की ज़मीन दे क्यों नहीं देते.'' विनम्रता थी रामेश्वर के इन शब्दों में.

''नहीं,'' मानो महाजन के मन में आग लग गयी हो — ''मैं किसी भी क़ीमत पर खेत वापस नहीं करूंगा.''

''ऐसा अनर्थ न करें महाजनजी.''

''देखो भाई!'' समझाने वाली मुद्रा में महाजन बात करने लगा — ''जब आपने कहा कि फलां तारीख़ को मैं अपनी चीज़ छुड़ा लूंगा, तो क्यों नहीं छुड़वायी. उस तारीख़ को क्यों नहीं आये? और उसके काफ़ी दिन बाद तक भी तो नहीं आये. तो अब मैं क्या करूं, आप ही बताइए?''

''लेकिन महाजनजी, यह भी तो हो सकता है कि राजारामजी बेचारे किसी काम में फंस गये हों, इसलिए वे अमुक दिन पर न पहुंच पाये हों.''

रामेश्वर ने काफ़ी सहजतापूर्वक अपनी बात कही थी. लेकिन महाजन बात मानने को तैयार ही न था. उसकी एक ही रट थी कि जब कचहरी तक बात आ ही गयी है तो कचहरी का फ़ैसला ही माना जाएगा.

ठीक साढ़े ग्यारह बजे पुकार हुई. सामने जज साहब बैठे थे. एक कटघरे में वह खड़ा था. दूसरे में महाजन और बीच में काले कोट पहने वकील लोग अपनी दलीलें पेश कर रहे थे. रामेश्वर सामने लगी कुर्सियों पर बैठा था. जज साहब फ़ाइल का पन्ना पलटकर देख रहे थे.

कुछ देर बाद जज साहब जब फ़ाइल देख चुके तो पास खड़े व्यक्ति को इशारा किया. उसने लाल कपड़े में लिपटी कुछ वस्तु सामने करते हुए कहा — ''मेरे साथ कहो कि जो कुछ कहूंगा सच कहूंगा, सच के सिवा कुछ न कहूंगा.''

इस प्रकार की क़ानूनी कार्रवाई पूरी करने के बाद महाजन के वकील ने मुझसे कुछ सवालात किये, जिनका उत्तर मेरे वकील ने मुझे पहले ही सिखा-पढ़ा दिया था. थोड़ी देर बाद मुझे बाहर जाने को कहा गया. अब अंदर रामेश्वरजी और महाजन तथा वकील साहब आदि लोग रह गये. मैं बाहर बैठा सोच रहा था कि क्या फ़ैसला होगा. कहीं मेरी ज़मीन न डूब जाये. नहीं... नहीं... मेरे मन में बुरे विचार उत्पन्न होने लगे थे. मैं मन-ही-मन बूढ़े बरगद के बाबा का ध्यान करने लगा.

बाहर बैठे-बैठे क़रीब आधा घंटा हो गया था और लोग अभी अंदर ही थे. मैं सोच रहा था कि क्या पूछ रहे होंगे रामेश्वर से. वह क्या जवाब दे रहा होगा. फिर मुझे वकील साहब का ख़्याल आया. वकील साहब ने तो पहले ही सिखा दिया था रामेश्वर को, जो बोलना था. इसलिए मुझे चिंता करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी.

थोड़ी देर बाद रामेश्वर बाहर आया और बोला — ''१०० रुपए दे दो.''

मैंने फट से धोती के एक कोने में बंधे रुपयों में से एक १०० का नोट निकालकर दे दिया. रामेश्वर अंदर चला गया. लेकिन रुपए क्यों? मेरे मन में और द्वंद्व उत्पन्न होने लगा.

क़ानूनी कार्रवाही है, रुपए तो लगते ही हैं. मन को जैसे-तैसे मनाया, अपने-आप को सांत्वना देता रहा. कुछ देर बाद वकील साहब और रामेश्वर बाहर आये. आते ही वकील साहब ने मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा — ''राजारामजी, बधाई हो.''

''क्या फ़ैसला मेरे पक्ष में हुआ?'' मैं तपाक से पूछ बैठा.

''हां.'' वकील साहब ने कहा और आगे बढ़ गये.

मैंने रामेश्वर का हाथ पकड़ते हुए कहा, ''क्या जो मैंने सुना वह तुमने भी सुना? क्या यह सच है?''

''हां भई, जज साहब ने साफ़-साफ़ महाजन से कह दिया कि आइंदा फिर कभी किसी ग़रीब की मज़बूरी का फायदा न उठाना.''

मेरा मन कह रहा था कि जी भरकर नाचूं लेकिन मज़बूर था. तभी मुझे रुपयों का ध्यान आया. मैंने रामेश्वर से पूछा तो उसने इतना ही कहा कि वह तुम्हारा जुर्माना था. मैंने अपने मन को ये समझा दिया कि चलो १०० रुपये गये तो क्या हज़ारों रुपए की ज़मीन तो वापस मिल गयी.

किसी ने सच ही कहा है कि सच्चाई की हमेशा ही जीत होती है, चाहे वह देर से ही क्यों न हो और फिर बैलगाड़ी से हम वापस अपने गांव आ गये.

महाजन अपनी धोती का छोर पकड़े टैक्सी के इंतज़ार में कचहरी के बाहर खड़ा रहा.

१३६-शिर्डीपुरम,
कोलार रोड, भोपाल (म. प्र.)
मो: ७४७११२१९६९
E-mail : rahi_chandrabhan@rediffmail.com

लघुकथा

'शरीफ़ लुटेरे'

योगेंद्र शर्मा

परमजीत और जगजीत दोनों सहेलियों को पार्क के गेट पर दो मोटर-बाइक सवारों ने रोका और परमजीत की चेन और जगजीत के बुंदे खींच ले गये.

दूसरे दिन सुबह जब वे पार्क में घुस रही थीं, तो उन्हीं लुटेरों ने उन्हें फिर रोका. जगजीत के कानों पर टेप लगा था और परमजीत के गले में दवाई लगी थीं. ''साली, हरामजादी पच्चीस रुपये के बुंदे पहनती है और तू... तू बीस रुपल्ली की चेन पहनती है. श-रम-म नहीं आती, जी करता है. दो-दो चमाट...''

''जाने दे यार... औरतों पर हाथ नहीं छोड़ते.''

३/२१ सी, लक्ष्मीबाई मार्ग,
रामघाट रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.).
मो. : ९८९७४१०३२०

फ़ेयर ड्राफ़्ट

मीनाक्षी दुबे

जन्म : २९ अक्तूबर १९६६., हरसूद
बी. एससी, देवास (म. प्र.)

अध्ययन एवं लेखन
में विशेष रुचि

वे कागज़ के फूल आज फिर मेरे सामने थे, जो शीतल ने मुझे दिये थे. मैंने दुलार से उन्हें देखा, हौले से उठाया, हल्के से झटक कर उनकी धूल साफ़ कर दी. साफ़ होकर वे फिर से चमक उठे. थे तो वे कागज़ के पर बड़ी ही सुंदरता से बने हुए थे. कागज़ की छोटी–बड़ी पंखुड़ियों को करीने से लगाकर, गुलाब का रूप दिया गया था. शुरुआत की चार पंखुड़ियां अधखुली थीं, इसके बाद छः पंखुड़ियां कुछ खुली हुई थीं, इसके बाद आठ, फिर दस इस तरह क्रमवार संख्या बढ़ाते हुए लगभग तीस चालीस पत्तियों को मिलाकर एक गहरा गुलाब बना दिया गया था. इस गहरे गुलाब में शीतल की कलाकारी तो नज़र आ ही रही थी, कुछ ही देर में मुझे उसका मुस्कुराता चेहरा भी दिखाई पड़ने लगा.

आज से छः साल पहले, जब मैं उससे मिली थी, तब उसके चेहरे का रंग भी, इसी पीले गुलाब की तरह पीला दिखायी दे रहा था. मेरा इंदौर के कॉलेज़ में नया-नया एडमीशन हुआ था. पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते थे मेरे... करियर की राह तय हो गयी थी. बस पढ़ाई के इन चार सालों बाद यह दुनिया मेरी मुट्ठी में होगी. हमेशा मेरा मन, तितली की तरह उमगा रहता. रोज़ाना अप-डाउन करना पड़ता था, कभी बस में जगह मिलती, कभी नहीं मिल पाती. मन में इतनी उमंग और उछाह होता कि लौटने के लिए बस में चढ़ते ही थकान उतर जाती. एक दिन मैंने 'इंदौर-भोपाल' वीडियो कोच बस को स्टॉप पर खड़े देखा. मेरे पूछने पर कंडक्टर ने हामी में सिर हिलाया, साथ ही चेताया भी कि बस में बैठने की जगह नहीं मिलेगी. मैंने कहा — 'ठीक है' और मैं बस में चढ़ गयी. एक थ्री-सीटर के पास टिक कर खड़ी हो गयी और अपने बैग से इयर-फ़ोन निकाल कर हाथ में पकड़े अपने मोबाइल में लगा ही रही थी कि एक आवाज़ मेरे कानों में पड़ी, 'यहां बैठ जाओ.' मैंने देखा उस थ्री-सीटर पर मेरी हम-उम्र एक लड़की लेटी हुई थी, एक कोने में थोड़ी-सी जगह बना कर बैठे हुए उसके पिता, अपनी जगह से उठकर, मुझसे वहां बैठ जाने का आग्रह कर रहे थे.

मैं तुरंत बैठ गयी और इयर फ़ोन लगाकर गाने सुनने लगी. अचानक मेरा ध्यान उस लड़की के चेहरे की ओर गया, पुराने पत्ते की तरह उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था, चेहरे और शरीर पर हल्की-सी सूजन भी दिखायी पड़ रही थी. थी तो वह मेरी ही उम्र की लेकिन बहुत कमज़ोर और थकी हुई लग रही थी. वह उठकर बैठने की कोशिश करने लगी और अपने पिता के लिए, बैठने की जगह बनाने लगी. 'नहीं-नहीं तुम लेटी रहो' उसके पिता ने कहा. मैं भी अपनी जगह से उठना चाह रही थी, 'तुम आराम से लेटो.' मैंने कहा. लेकिन शीतल और उसके पिता ने आग्रह से मुझे बैठा लिया, अपने आपको समेटते हुए मैं थोड़ी-सी जगह में बैठ गयी.

'बीमार हो' — मैंने पूछा.

'हां' — छोटा-सा जवाब आया.

'पढ़ती हो' — मैंने पूछा.

'नहीं' — उसका जवाब था.

'मैंने पढ़ाई छोड़ दी,' वह कह रही थी. मेरा मन उसे पढ़ाई के फायदे गिनाना चाह रहा था, मेरी आंखों में अपनी पढ़ाई से बुने सपने तैर रहे थे, लेकिन मैं चुप रही.

'यह कमज़ोरी के कारण कॉलेज़ नहीं जा पाती' — उसके पिता ने कहा.

'ओह' — यह कहकर मैं चुप हो गयी.

'मेरी टेन्थ-क्लास में फ़र्स्ट-रैंक बनी थी और ट्वैल्थ में मैं टॉप फ़ाइव में थी,' वह कह रही थी. उसका स्वर कांप रहा था, वह स्वयं भी हल्के से कंप-कंपा रही थी जैसे अपने अंदर घुमड़ रहे तूफ़ान को रोकने की कोशिश कर रही हो. उसके चेहरे के भाव मेरे अंदर गहरे तक उतर रहे थे, मुझे लगा जैसे उसकी आंखें भी पनीली हो रही हैं, मैंने उसे गहरी नज़र से देखा और अपना एक इयर-फ़ोन उसके कान में लगा दिया. बात बदलते हुए मैंने कहा — 'चलो हम मिलकर गाने सुनते हैं.' तुम क्या सुनना चाहोगी...? मैंने पूछा. 'जो चल रहा है वही सुन लूंगी,' यह कहकर वह चुप हो गयी और गाने सुनने लगी. धीरे-धीरे उसके चेहरे पर आये मनोभाव शांत हो गये, वह एक फीकी-सी मुस्कान के साथ मुस्कुरायी तो मैंने भी, चैन की एक लंबी गहरी सांस ली. उसके पिता ने मुझसे पूछा — 'पढ़ती हो?'

'हां' — मैंने कहा.

'अप-डाउन करती हो', आगे पूछा.

'हां, अभी-अभी कॉलेज़ में मेरा एडमीशन हुआ है,' मैंने कहा.

'हमारा भी इंदौर आना–जाना लगा रहता है,' उन्होंने कहा. 'हूं.' — मैंने लापरवाही से कहा. 'हफ़्ते में दो बार' — वे बोले. 'अच्छा' मेरा स्वर सहज था. 'हर सोमवार और गुरुवार,' उनका स्वर गंभीर था. मैंने गाने से ध्यान हटाकर उनकी ओर देखा, उनके चेहरे पर गहरी उदासी और दुख था. मैं भी तनिक गंभीर हो उठी. 'क्यों', मैंने पूछा. इसके 'डायलिसिस' के लिए. यह सुनकर मैं चौंकी. मैंने शीतल की ओर देखा, गाना सुनते हुए वह सहज लग रही थी, चेहरे पर उदासी और कमज़ोरी तो अब भी थी. मैंने दूसरा इयर-फ़ोन भी उसके कान में लगा दिया और उसके पिता से पूछा — 'कब से डायलिसिस हो रहा है?' 'पिछले तीन महीनों से,' वह उदास स्वर में बोले. मेरे स्वर में भी उदासी थी, 'ओहह', कहकर मैं चुप हो गयी. देवास आ गया था, मुझे भी उतरना था. 'हम हमेशा इसी बस से आते हैं.' वे कह रहे थे. मैं बात तो करना चाहती थी पर मुझे उतरने की जल्दी थी, मैंने खड़े होकर बैग उठाया तो उसने इयर-फ़ोन निकाल कर मेरे हाथ में दे दिये और हल्के से मुस्कुरा दी. जवाब में मैंने एक भरपूर मुस्कुराहट उसके चेहरे पर डाली और 'बाय' कहते हुए उतर गयी.

'डायलिसिस' शब्द मेरे कानों में गूंज रहा था. मैं इसके बारे में ज़्यादा तो नहीं जानती थी पर, यह एक गंभीर बीमारी है, इतना ज़रूर जानती थी. घर आकर मैं अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गयी, भोजन किया पढ़ाई भी की, लेकिन यह शब्द मुझे झकझोर रहा था. रात को सोने से पहले मैंने 'डायलीसिस' को गूगल-सर्च किया, ध्यान से पढ़ने लगी, पढ़ते हुए मैं जान गयी कि यह रक्त-शोधन की एक प्रक्रिया है, किडनी के काम न करने की स्थिति में इसे अपनाया जाता है. मैंने सोचा, शीतल की किडनी ने भी काम करना बंद कर दिया होगा और लगभग अस्सी से नब्बे प्रतिशत क्षतिग्रस्त हो गयी होगी, तभी तो सप्ताह में दो बार उसे डायलिसिस यानी 'ब्लड-डिटॉक्सि-फ़ाई' से गुज़रना पड़ता है. इस प्रक्रिया में चार से छः घंटे लगते हैं, मैं सोचने लगी, यह प्रक्रिया लंबी होने के साथ-साथ त्रासद भी होती होगी तभी तो उसके चेहरे पर इतनी थकान थी. मैंने आगे पढ़ा, इसमें खान-पान का भी विशेष ध्यान रखना पड़ता है, भोजन और केवल कुछ फल ही रोगी के लिए

निर्धारित हैं और तो और पानी भी एक निश्चित मात्रा में ही लेना पड़ता है. यानी फल, भोजन, पानी सब कुछ सीमाबद्ध. शीतल की इस त्रासदी पर मेरा मन दुखी हो गया, उसे कुछ भी मनचाहा करने की इज़ाज़त नहीं थी. गूगल पर सर्च करते हुए मैंने जाना कि इस रोग का पता चल जाने के बाद, रोगी की उम्र लगभग ढाई-तीन साल ही रह जाती है. मैं सोचने लगी कि शीतल के पास भी अब बस ढाई-तीन साल ही बचे होंगे, तभी तो इतनी मायूस लग रही थी. कमज़ोर और बीमार शरीर के साथ जीने का वक़्त भी बस इतना ही. उसे इस सच्चाई का पता है भी या नहीं. कैसा लगता होगा उसे... इसी सोच विचार में मेरी आंख लग तो गयी लेकिन सारी रात मुझे शीतल और उसकी बीमारी का अहसास रहा और वह मेरे मन मस्तिष्क पर छायी रही.

सुबह कॉलेज़ के लिए बस में बैठी तब भी वह मेरे विचारों में ही थी, मैं आने वाले गुरुवार का बेसब्री से इंतज़ार करने लगी, लेकिन बीच में कई सोमवार और गुरुवार निकल गये. मैं 'विजयंत-ट्रेवल्स' की उसी इंदौर-भोपाल बस में भी बैठी लेकिन वे लोग मुझे नहीं मिल पाये. मुझे हमेशा उसका ख़्याल आता रहता, उसकी बीमारी, उपचार की त्रासदी, उपचार पर होने वाला ख़र्च, जीवन जीने के लिए बचे कुछ साल... ये सब बातें मेरे मन में उमड़ती रहतीं. अपनी पढ़ाई के साथ-साथ अब शीतल भी मेरे सोच विचार का हिस्सा बन गयी थी. लगभग तीन महीने के बाद एक सोमवार की शाम मैं उसी बस में चढ़ी, चारों ओर नज़रें घुमा ही रही थी कि मुझे शीतल दिखायी पड़ गयी. बिना देर किये मैं उन लोगों के पास जा खड़ी हुई. सबसे पहले मैंने शीतल से उसके हाल-चाल पूछे. उसने मुझे कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, बिना बोले ही पास बैठ जाने का इशारा कर दिया. उसके चेहरे से लग रहा था जैसे, उसकी वेदना का बांध बस टूटने ही वाला हो. आज वह पहले से भी अधिक दुखी, कमज़ोर और मायूस लग रही थी. मैं भी कुछ देर चुपचाप ही बैठी रही. कुछ देर चुपचाप रहने के बाद मेरा मन नहीं माना तो मैंने आत्मीयता से पूछा — 'क्या हुआ? कुछ तो कहो.' वह धीरे से बोली — 'आज मन बहुत दुखी है.'

'क्यों' — मेरे पूछने पर कुछ देर चुप रहकर उसने कहा — 'मुझसे पहले नंबर पर जिस लड़के का डायलिसिस होता था, वह पिछले दो बार से दिखाई नहीं दिया था. आज मेरे पूछने पर पता चला, वह अब इस दुनिया में नहीं रहा. उम्र में मुझसे भी छोटा था वह तो, बस बारह-तेरह बरस का.' यह सब कहते हुए उसकी आंखें छलछला गयीं और गला भी रुंध गया. मैंने उसका सिर अपने कंधे से टिका लिया.

'मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मौत से मिलकर आ रही हूं.' यह सब कहते हुए मैं उसे ध्यान से देख रही थी, ऐसा लग रहा था जैसे उसकी आवाज़ किसी गहरी खाई से आ रही हो. वह मेरे सामने बैठी तो थी, लेकिन अपने मन में न जाने क्या सोच रही थी. पूरी तरह अपने आप में गुम होकर. वह चुप हो गयी और चुपचाप ही उसके आंसू बहने लगे. मैं भी चुप ही, उसका हाथ अपने हाथों में ले कर सहलाने लगी. उससे क्या कहूं, कुछ समझ नहीं आ रहा था, जब उसका मन कुछ शांत हुआ तो मैं उसे देख कर मुस्कुरायी. जवाब में आयी उसकी हल्की-सी मुस्कुराहट ने मुझे बल दिया, हम दोनों मिलकर हल्की–फुल्की बातें करने लगे. देवास आ गया था, मैंने उसका फ़ोन नंबर लिया और रोज़ बात करने का वादा भी लिया. मुस्कुराते हुए मैं अपने स्टॉप पर उतर गयी. घर आकर भी शीतल का दुख मेरे साथ ही था, इसी तरह एक दिन शीतल की उम्र भी ख़त्म हो जायेगी क्योंकि हर डायलिसिस के साथ किडनी कमज़ोर हो रही होगी. उसकी ज़िंदगी के बचे हुए दिन किस तरह उल्लास से भरूं, मैं हमेशा यह सोचती रहती.

रोज़ कॉलेज़ से आकर मैं उससे बातें करती. सबसे पहले मैं उसकी तबीयत के बारे में पूछती और वह मेरी पढ़ाई के बारे में पूछती. उसे मेरी पढ़ाई में बहुत दिलचस्पी रहती थी. एक दिन बातें करते हुए मैंने उसे ई.डी. इंज़ीनियरिंग ड्राइंग के बारे में बताया तो वह ख़ुश हो कर बोली, 'अरे वाह, यह तो बहुत मज़ेदार है और आसान भी.' 'तुम्हें ई.डी. आसान लगता है' — मेरे स्वर में अचरज था. 'हां मुझे-मुझे ड्राइंग और क्राफ़्ट में बहुत मज़ा आता है' — उसने मुझसे कहा. इसके बाद हम दोनों इधर–उधर की बातें करने लगे.

एक दिन अचानक मैंने उससे पूछा — 'तुम टेन्थ में टॉपर थीं तो तुमने अपने करियर के लिए भी कुछ न कुछ सोचा ही होगा.' उसने कहा — 'पिताजी गांव में मिडिल-स्कूल चलाते हैं, मैं ग्रेज़ुएशन के बाद बी. एड. करके उसी स्कूल में काम करती, पिताजी का हाथ बंटाती ...हम अपने स्कूल को 'हायर-सेकेंड्री' स्कूल बनाते. यानी तुम 'प्रिंसिपल' बनना चाहती थीं, मैंने उसे छेड़ा...'नहीं एक अच्छी टीचर...'

उसने कहा.

'एक अच्छी टीचर... टीचर तो तुम अब भी बन सकती हो,' मैंने कहा — 'ग्यारहवीं, बारहवीं ना सही प्राइमरी स्कूल को ही पढ़ा दिया करो.' मैंने चहकते हुए कहा. 'अरे नहीं, मेरा नियमित स्कूल जाना नहीं हो पायेगा... कभी तेज़ सरदर्द होता है, कभी चक्कर आ जाता है, कभी जी मिचलाने लगता है. इस तरह कैसे पढ़ा पाऊंगी बच्चों को.

बच्चों को नियमित पढ़ाई की ज़रूरत होती है. हम बच्चों की पढ़ाई के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते. 'हां यह तो है', मैंने कहा और चुप होकर सोचने लगी. अचानक मेरे दिमाग में ख़्याल आया और मैं बोल पड़ी — 'तुम' क्राफ़्ट-टीचर' बन जाओ, तुम्हारी रुचि भी है, कुछ अपने आप और कुछ यू-ट्यूब से सीख लेना.' 'अरे हां, यह तो हो सकता है' उसने ख़ुश होते हुए कहा. 'डायलिसिस के दो दिन सोमवार और गुरुवार के अलावा जो दिन तुम्हें सुविधाजनक और आरामदायक लगे, उस दिन पहुंच जाना क्लास में, क्राफ़्ट टीचर बनकर,' मैंने जोश के साथ कहा. वह हंस पड़ी. मैं भी कुछ निश्चिंत हुई.

अब हम दोनों के बीच बात करने का एक और टॉपिक हो गया था क्राफ़्ट. वह बड़ी दिलचस्पी से मुझे अपनी रोज़ की गूगल सर्च के बारे में बताती. वह आमतौर पर घरेलू उपयोग में आने वाली, या उपयोग से बाहर हो चुकी चीज़ों से बने क्राफ़्ट को चुनती. यदि बाज़ार से कोई चीज़ लानी होती तो उसे जुटाने में उसके पिता और भाई मदद करते. इस तरह उसने बहुत-सी चीज़ें सीख ली थीं और वह स्कूल जाकर सिखाने को तैयार भी थी.

एक शनिवार सुबह उसका फ़ोन आया—'आज मैं पहली बार स्कूल जा रही हूं, बच्चों को सिखाने. मैंने इस महीने का विषय रखा है बेस्ट फ्रॉम वेस्ट. अनुपयोगी वस्तुओं से कुछ कलात्मक चीज़ें बनायी हैं... उन्हें बच्चों को दिखाकर, प्रोत्साहित करूंगी कि वे अगले शनिवार अपने घर से कुछ ऐसी ही चीज़ें ढूंढ़ कर लायें... कुछ आवश्यक चीज़ें मैं अपने पास से उन्हें दे दूंगी. हम सब मिलकर कुछ बेहतर कलात्मक चीज़ें बनायेंगे. चार शनिवार इस काम को करेंगे... अगले महीने फिर नया. हर महीने दैनिक उपयोग की चीज़ों से ही कुछ कलात्मक काम करने की कोशिश रहेगी. 'बाज़ार से महंगा सामान लाकर कुछ बनाने में क्या मज़ा. मज़ा तो तब है जब कम दाम और चोखा काम हो. सही कह रही हूं ना मैं.' वह जोश के साथ कह रही थी और मैं चुपचाप मुग्ध होकर सुन रही थी. 'कहां हो तुम... मुझे सुन भी रही हो या नहीं...' उसके प्रेमपूर्ण उलाहने ने मुझे चौंकाया.

'बहुत सही निर्णय है तुम्हारा... एकदम सही दिशा में जा रही हो मेरी दोस्त.' मैंने उत्साह भरे स्वर में कहा. 'तुम तो ऊर्जा से भरी, जन्मजात कलाकार हो, लेकिन इस सब में अपनी दवाइयों को मत भूल जाना. याद रखकर समय पर दवा लेना, अपने मेटाबॉलिज़्म को बढ़ाने की कोशिश करती रहना. 'हां बाबा, मैं पूरा ख़्याल रखूंगी... मुझे निकलने दो अब,' उसका उत्साही स्वर था.

अपने गांव के बच्चों और गांव के लोगों से, अपने परिवार से उसे अच्छा रिस्पॉन्स मिला. धीरे-धीरे महिलाएं भी सीखने आने लगी थीं. वह अपनी क्लास के बारे में बताती तो मैं उसे कहती, 'तुमने तो बड़ी जल्दी नाम कमा लिया, मेरी तो इंज़ीनियरिंग भी पूरी नहीं हो पायी अभी.' वह कहती, 'मेरे पास रफ़ ड्रॉफ़्ट को फ़ेयर करने का समय कहां है, जो भी करना है फ़ेयर ही करना है और मैं अपने जीवन को रफ़ ड्रॉफ़्ट की तरह नहीं छोड़ना चाहती.

इसी क्रम के चलते, एक दिन, ये मुस्कुराते गुलाब मेरे वॉट्सअप पर भेजे गये थे, साथ है स्नेहभरा आमंत्रण भी... 'लेने के लिए घर आना पड़ेगा तुम्हें.' मैंने कहा — ज़रूर. पर मेरा इंज़ीनियरिंग का अंतिम वर्ष था, प्रोफ़ेशनल ट्रेनिंग, कैंपस सेलेक्शन, फ़ाइनल एग्ज़ाम्स का दबाव, मैं उससे मिलने नहीं जा पायी.

जीवन की आपाधापी व्यस्तता में, मेरी पढ़ाई भी हो गयी, कैंपस सेलेक्शन भी हो गया, अपनी परीक्षा के बाद मैंने मल्टीनेशनल कंपनी में, एक महानगर में नौकरी भी कर ली, लेकिन अपने शहर से बस चालीस किलोमीटर दूर, शीतल के घर नहीं जा पायी. फ़ोन पर तबीयत और क्राफ़्ट के बारे में बातें तो होती रहतीं, मैं हर बार अपने 'घर' आने पर उससे मिलने का वादा अवश्य करती पर मिल नहीं पाती.

एक दिन घंटी बजने पर जब मैंने फ़ोन उठाया तो उसके पिताजी की आवाज़ सुनकर मैं चिंता में पड़ गयी. 'शीतल को क्या हुआ' मेरे स्वर में अनजाना भय था. उन्होंने कहा — 'वह ठीक है,' सुनकर मैंने चैन की सांस ली. उन्होंने आगे कहा — 'हम सब गांव के बच्चे और महिलाएं जिन्होंने शीतल से कुछ न कुछ सीखा है, मिलकर एक क्राफ़्ट प्रदर्शनी लगा रहे हैं. शीतल के लिए यह सरप्राइज़-

गिफ़्ट है, उसके पच्चीसवें जन्मदिन पर और यदि तुम भी आ जाओ तो यह भी एक गिफ़्ट ही होगा उसके लिए. वह तुम्हें बहुत याद करती रहती है.' मैंने अपनी नौकरी की व्यस्तता का हवाला दिया और आने में अनिश्चितता जतायी तो वे बोले — 'जानती हो ना, आजकल हफ़्ते की तीन डायलीसिस हो गये हैं, एक दिन छोड़ कर इंदौर जाना पड़ता है. इन दिनों वह बहुत खांस भी रही है, उसे लंग्स-इंफ़ेक्शन भी हो गया है...' इतना कहकर वह चुप हो गये. उनके मौन में छिपी पीड़ा और आग्रह को मैं टाल न सकी, और दौड़ी चली आयी. प्रदर्शनी वाले दिन हम सब उसके गांव पहुंचे.

वह बहुत ख़ुश थी, हर एक चीज़ के बारे में बता रही थी. हम आश्चर्य से देख रहे थे, उसका रोम-रोम सौंदर्य एवं कला-बोध से भरा हुआ था, हर चीज़ में उसकी वही सुंदरता और कलात्मकता उभर आयी थी. उससे विदा लेते हुए हाथ मिलाया तो हमेशा ठंडा रहने वाला उसका हाथ आज गुनगुना-सा लगा. ऊष्मा से लबरेज़ उसकी आंखों में गज़ब की चमक थी. उसने कहा — 'मुझे अब रास्ता मिल गया है. ज़िंदगी भले ही छोटी हो लेकिन बड़ी होनी चाहिए, मुकम्मिल होनी चाहिए. थैंक्स दोस्त... मुझे अपने से बाहर झांकने की ताकत देने के लिए...' कहते हुए यह काग़ज़ के फूलों का गुच्छा उसने मुझे दिया था, जो मुझे हमेशा याद दिलाता रहता है उसकी और उसकी ज़िंदगी के फ़ेयर ड्रॉफ़्ट की.

श्री कुंज, २४ मैनाक्षी कॉलोनी,
आरा मशीनवाली गली,
देवास (म. प्र.)-४५५००१.
मो. : ९९२६०२८८४८
ई-मेल : *meenaksheedubey3651@gmail.com*

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

कविता

घाम की चिलकन में

अनिता रश्मि

वहां हैं एक और
हीरा-मोती प्रेमचंद के
खेतों में सूखी घास पर
मुंह मारते एक साथ
उठी धूल हो या
घनी धूप की मार
वे दोनों अपने खूंटे से बंधे
हाथ भर रस्सी की
स्वतंत्रता में बिचरते हैं

ये हीरा-मोती तुड़ाकर रस्सी
कभी भी नहीं भाग उठते
अपने पुराने मालिक के गांव
इनके पांवों की जंजीरें
इनके क़दमों को लेती हैं
कसकर बांध

जायें तो जायें कहां
यह ही तो उनका
पुराना-नया मालिक है
बांध जाता है जो भरी दुपहरिया में
खेतों में कभी इधर
कभी उधर गाड़कर खूंटा
शाम ढले खूंटे को उखाड़
ले जाता साथ अपने

गाछ-बिरिछ की घनेरी छाया की
कमी नहीं है यहां
लेकिन बांधेगा वह जेठ की
तपती धूप में ही उन्हें
और आदत नहीं
उसके हीरा-मोती की कि
आज़ाद होने के लिए
खूंटा तोड़कर भागें,
वे आज़ादी की परिभाषा नहीं जानते.

१सी, डी ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड,
पूर्णिमा कॉम्प्लेक्स के पास, कुसई,
डोरंडा, रांची-८३४००२.
ईमेल - *anitarashmi2@gmail.com*
मो. - ९४३१७०१८९३.

लघुकथा

सबूत

✍ किशन लाल शर्मा

"दोनों पक्षों की बात सुनने के पश्चात पंच इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि बच्चा लाखन का ही है, इसका कोई सबूत नहीं है. अतः पंचों का फ़ैसला है कि लाला के बेटे पर लगाया गया आरोप निराधार है. झूठा आरोप लगाकर एक इज़्ज़तदार आदमी को बदनाम करने की सज़ा पंचायत हरिया और उसकी बेटी को गांव से निष्कासित करने की देती है."

पूरे गांव में चर्चा का विषय हरिया की बेटी थी. होती भी क्यों नहीं? कुंवारी के पैर जो भारी हो गये थे. ना जाने कहां का पाप उठा लायी थी. पूरी बिरादरी-गांव में हरिया की नाक कटवा दी थी. पहले छमिया छुप रही. लेकिन फिर बता दिया था कि लाला के बेटे लाखन का पाप उसके पेट में पल रहा है.

बेटी के साथ ज़बरदस्ती करने वाले का नाम पता चलने के बाद हरिया कई दिनों तक सोचता रहा. कई दिनों की सोच विचार के बाद उसने गांव में पंचायत बुलायी थी. उसने प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी पढ़ी थी. पंच, परमेश्वर के समान होते हैं. लेकिन हरिया भूल गया था, तब नैतिकता, सदाचार, ईमानदारी, सच्चाई का ज़माना था. पैसे से बड़ा ईमान होता था. पर अब रुपया सबसे बड़ा हो गया था. रुपये से सब कुछ ख़रीदा जा सकती है. इसी का नतीज़ा था कि लाला ने पैसे के बल पर पंचों को ख़रीद लिया था. इसलिए पंचायत में लाला के हाव-भाव बतला रहे थे कि वह फ़ैसले को लेकर निश्चिंत था. लेकिन पंचों ने जो फ़ैसला सुनाया उसे सुनकर हरिया सन्न रह गया. फ़ैसला सुन कर वह गिड़गिड़ाने लगा. पिता को गिड़गिड़ाता देख कर छमिया बोली –

'बापू पंचों के सामने गिड़गिड़ाने की ज़रूरत नहीं है. मेरे पास सबूत है कि यह बच्चा लाखन का ही है.'

'क्या सबूत है?' छमिया की बात सुनकर सरपंच बोले.

'मेरा डी एन ए टेस्ट करवा लो. पता चल जायेगा कि मैं सच बोल रही हूं या नहीं.'

आज़ाद भारत की दलित औरत की हुंकार सुनकर पंचों को सांप सूंघ गया. लाला के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं.

१०३, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज, आगरा- २८२०१०. मो. : ९७६०६१७००१.

मुक्तक

✍ विश्वंभर दयाल तिवारी

हर शख्स मुझको
अच्छा नही लगता,
ख़ुदगर्ज़ हूं इसलिए
अच्छा नहीं लगता.

चाहता हूं कश्मीर में
चैनो-अमन हो,
दहशतगर्द कोई मुझे
अच्छा नहीं लगता.

ये भारत-भूमि मां
सबकी जो यह मानें,
न माननेवाला मुझे
अच्छा नहीं लगता.

हैं सैनिक सदा से ही
नम्र दिल उनको,
कोई पत्थर मारे मुझे
अच्छा नहीं लगता.

उगाए कैक्टस जो
नोच क्यारी केसरी,
खेतिहर वो कश्मीरी
अच्छा नहीं लगता.

'विश्व' क्यों ना देखता
सच शब्द विकसित?
हर नफ़रती छंद मुझे
अच्छा नहीं लगता.

३०२, कृष्णा रेची सोसायटी, केंद्रीय विहार, से- २०, खारघर, नयी मुंबई- ४१०२१०.

गुड मॉर्निंग सर

राजेंद्र कुमार शास्त्री 'गुरु'

जन्म : १ मई १९९४

: प्रकाशन :
रचनाएं साहित्य कुंज, अहा! ज़िंदगी (दैनिक भास्कर), हिंदी कुंज, साहित्य सुधा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित. वर्तमान में मेरी कुछ रचनांए प्रतिलिपि पर भी उपलब्ध हैं इसके अतिरिक्त कुछ रचनाएं एफएम रेडियो पर प्रसारित. एक कहानियों की पुस्तक स्व-आंकलन का वर्ष २०१६ में पुरुषोत्तम पब्लिशर्स से प्रकाशन. इन दिनों तीन उपन्यासों का लेखन जारी है.

: अभिरुचि :
लेखन, पठन एवं अभिनय की बारीकी सीखना.

: विशेष :
डिस्लेक्सिया पीड़ित बच्चों की शिक्षा में सहयोग एवं लेखन में निरंतर प्रयास जारी.

धंसी हुई आंखें, तीखी हलनुमा ठुड्ठी, चौड़ी मोहें और पिचके हुए गाल मुझे एक बेहद ही अजीब-सी शक्ल वाला युवा बनाते हैं. ऊपर से मेरा काला रंग मुझे अन्य युवाओं से भिन्न बना देता है. मैं अन्य युवाओं की तरह सुंदर और गौर वर्ण का नहीं हूं. यही कारण था कि अक्सर कॉलेज़ व स्कूल में मेरे सहपाठी मेरी शक्ल-सूरत का मजाक उड़ाते थे और मैं हमेशा अपमान का घूंट पी लेता था. धीरे-धीरे मेरे जीवन में अपमान का यह ज़हर ऐसा घुलने लगा कि मुझे अपनी ही शक्ल से दुश्मनी-सी हो गयी. मैं अक्सर घर में बस एक ही कोठरी में बैठा रहता और मुश्किल से ही कभी बाहर निकलता. मेरा जीवन अब उस कोठरी तक ही सीमित रह गया. हमेशा कॉलेज़ से आने के बाद मैं उसी कोठरी में घंटों बैठा रहता. कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता कि कहीं मेरी मुस्कुराहटें इस कोठरी में ही क़ैद होकर न रह जायें. मैं यदा-कदा जब घर के अहाते में शाम को जाता तो कुछ गौरैयाएं दाना चुगने आतीं. मुझे बस उनसे ही लगाव था. आख़िर वही सब तो मेरी एकमात्र सच्ची दोस्त थीं. उनका मेरे सामने इठलाकर चलना और अगले ही पल अपने पंखों को फैलाकर उड़ जाना. बहुधा मैं ये सोचता रहता कि काश मैं भी इन पक्षियों की तरह एक पक्षी होता. क्योंकि इनमें इंसानों की तरह काले-गोरे का भेद करने की क्षमता नहीं होती. इनमें किसी दूसरे पक्षी के प्रति ईर्ष्या का भाव नहीं होता. यह कभी किसी दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश नहीं करते. ये कभी इंसानों की तरह किसी दूसरे का आकलन शक्ल-सूरत से नहीं करते बल्कि इनके लिए दिल की पवित्रता और सुंदरता मायने रखती है. लेकिन इंसान तो इनके बिलकुल उलट होते हैं. इंसान तो किसी दूसरे इंसान की परख उसकी शक्ल-सूरत, उसके धर्म, लिंग और उसकी जाति से करते हैं. ख़ैर मैं चाहकर भी पक्षी नहीं बन सकता था इसलिए शाम होते ही मैं वापस उस कोठरी में चला जाता. उस कोठरी में, जहां अंधेरा छाया रहता था. स्याह काला अंधेरा. शायद अब मुझे अंधेरा ही उजाले से ज़्यादा भाने लगा था क्योंकि अंधेरा काले-गोरे का भेद नहीं करता. उसके लिए सब एक समान

हैं. इसलिए न जाने क्यों मुझे अंधेरा प्यारा लगने लगा. मैं ना चाहकर भी तमस के समंदर में गोते लगाने को मज़बूर था. मेरी दुनिया साहित्य पठन और उन गौरेयाओं तक ही सीमित हो गयी थी. मैं जब भी दु:खी होता अपनी पुस्तकों को खोल लेता और उन पुस्तकों के पात्रों के साथ साहित्य के गहरे समंदर में गोते लगाने लग जाता. लेकिन कब तक? अगले दिन ज्यों ही सूरज की पहली किरण मेरी कोठरी में प्रवेश करती मैं पुन: सपनों की दुनिया से यथार्थ की दुनिया में आ जाता. मेरी यथार्थ की दुनिया सपनों की दुनिया से काफ़ी अलग थी. जहां पुस्तकों में कहानी की नायिका को अच्छे व नेक दिल लड़के ही पसंद आते हैं तो वहीं हक़ीकत के संसार में इसके बिलकुल उलट होता है. कोई भी लड़की मेरे चाहने के बावजूद भी मुझसे दोस्ती करने के लिए आगे नहीं बढ़ती थी. जो कोई भी थोड़ी बहुत बात करती वह भी सिर्फ़ पढ़ाई से संबंधित क्योंकि बस शिक्षा ही एक मात्र ऐसा क्षेत्र था, जहां मैं अन्य युवाओं से काफ़ी आगे था.

धीरे-धीरे वक़्त बीतता गया और मेरी दुनिया उस कोठरी में ही बंद होकर रह गयी. मैंने अच्छे अंकों से बैचलर की डिग्री हासिल की और फिर अंग्रेज़ी साहित्य से एम. ए. भी कर लिया. इस दौरान मेरे पिताजी का देहांत हो गया. इस कारण हमारे घर की आर्थिक स्थिति अस्थिर हो गयी.

एक रोज़ मेरी मां ने मुझे अपने गांव से पंद्रह किलोमीटर दूर एक बारहवीं तक के विद्यालय में पढ़ाने की सलाह दी. नौकरी मिलने में ख़ास दिक्कत नहीं हुई. स्कूल ज़्वाइन कर लिया. मुझे बाहरवीं तक अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ाने की एवज में पंद्रह हज़ार रुपये मासिक वेतन देना तय हुआ. मेरा मासिक वेतन मेरी उम्मीद से काफ़ी अच्छा था और इससे हमारे घर के आर्थिक हालातों को पटरी पर लाने की मुझे आशा थी. विद्यालय में मेरे शुरुआती कुछ दिन तो सामान्य रहे लेकिन जैसे-जैसे वक़्त बीतता गया मेरे काले रंग की वजह से बच्चों ने मेरा मजाक बनाना शुरू कर दिया. इस वजह से मेरे वही पुराने घाव वापस हरे हो जाते. मेरे ऊपर रोज़ की गयी रंग-भेदी टिप्पणियों की वजह से मेरा अध्यापन का कार्य भी प्रभावित होने लगा. कुछ बड़ी कक्षाओं के लड़कों ने मेरे तरह-तरह के उपनाम भी रख लिये.

एक रोज मैं हमेशा की तरह अंतिम कालांश में बारहवीं कक्षा में पढ़ा रहा था. मैंने जैसे ही चाक उठाकर श्यामपट्ट पर कुछ लिखना चाहा पीछे से अचानक मुझे किसी ने 'ओबामा' कहकर संबोधित किया. 'ओबामा' शब्द के सुनते ही मेरे अंदर एक अजीब–सी सिहरन पैदा हो गयी. पीछे की पंक्ति में बैठे कुछ लड़कों की शैतानी हंसी ने मुझे अंदर तक झकझोर दिया. मैं उनसे कुछ कह पाता इससे पहले ही घंटी बज चुकी थी. मैं बिना रुके विद्यालय से बाहर आ गया और बस स्टैंड की तरफ़ तेज़ी से बढ़ने लगा.

शाम के पांच बजने वाले थे. जनवरी का महीना होने के कारण उत्तरी हवाओं का दौर जोर पर था. एक कोट व मफ़लर भी ठंड के आगे हाथ खड़े कर चुके थे. मैंने जैसे ही नज़रें उठाकर आसमान की तरफ़ देखा तो पता चला पूरा आसमान बादलों से घिरा हुआ है. बादलों की वजह से सूरज अस्तांचल में शीघ्र डूबने जा रहा था. जिससे धीरे-धीरे अंधेरा छाने लगा. इस अंधकार की तरह ही तो मेरे जीवन में अंधकार छा चुका था. तुच्छ सोच वाले इंसानों की रंगभेदी टिप्पणियों ने मुझे भी सूरज की तरह अस्त होने को मज़बूर कर दिया था. उस लड़के के द्वारा बोला गया एक 'ओबामा' शब्द मुझे इस कदर तमस के समंदर में डुबो देगा मैंने सोचा नहीं था. मेरे दिमाग़ में बस एक ही ख़्याल आ रहा था कि आख़िर उस लड़के ने मुझे ओबामा क्यों कहा? क्योंकि मैं भी अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा की तरह अश्वेत हूं. मैं भी उनकी तरह काला हूं. ऐसे ही ना जाने कितने ख़्यालों ने मुझे घेरे रखा. उस दिन मुझे देर रात तक नींद नहीं आयी.

अगली सुबह मेरा स्कूल जाने का मन नहीं हुआ लेकिन परिवार में एक मात्र कमाने वाला होने के कारण मुझे विद्यालय जाना पड़ा. अब उन लड़कों का मुझ पर रंगभेदी टिप्पणियां करने का रोज़ का काम हो गया. उन्हें अंग्रेज़ी विषय पढ़ने में कोई रुचि नहीं थी. वे तो बस मेरा तिरस्कार करके ख़ुद को सुंदर सिद्ध करने पर तुले हुए थे. धीरे-धीरे मेरे मन में मेरी शक्ल-सूरत को लेकर हीनभावना बढ़ती ही चली गयी. अब मुझे मेरी हीनभावना ने आईने से दूरी बनाने को मज़बूर कर दिया. मुझे अब आईना खाने को दौड़ने लगा. मैं शनै: शनै: रंगभेदी टिप्पणियों के गहरे समंदर में डूबा जा रहा था और मुझे उस गहरे समंदर से हाथ पकड़कर बाहर निकालने वाला कोई नज़र नहीं आ रहा था.

अगले दिन मैं फिर से विद्यालय में समय पर पंहुचा. उन लड़कों ने फिर से मेरी शक्ल और मेरे श्याम वर्ण का मजाक बनाया. एक बारगी तो मेरा मन कर रहा था कि मैं

इस विषय में प्रधानाचार्य महोदय से बात करूं लेकिन अगले ही पल मुझे एक ख़्याल ने रोक लिया कि उनसे कहने से क्या होगा? क्या वे किसी की सोच को बदल देंगे? वैसे भी मैं इस संबंध में किन-किन के ख़िलाफ़ लड़ता? वे एक सीमित सोच वाले इंसानों में से थे. जिनकी सोच ही दूसरे लोगों को अपने से नीचा दिखाने की होती है. वैसे भी वे सभी मेरे विद्यार्थी थे. इस संबंध में अगर मैं कुछ भी बोलता तो अनुचित होता. इसलिए मैंने उनसे बिना कुछ कहे ही किनारा कर लेना ही उचित समझा.

एक बार फिर घंटी बजी और उस दिन मेरे क़दमों की रफ़्तार तेज़ होने की बजाय धीमी थी. क्योंकि मैं अब अंदर तक टूट चुका था. उन लड़कों के द्वारा मेरी आत्मा को भी अंदर तक झकझोर दिया गया. मैं धीमे-धीमे बस स्टैंड की तरफ़ बढ़ रहा था. आकाश में बादल फिर से छाये हुए थे. बादलों ने एक बार फिर सूरज को समय से पूर्व ही डूबने को मज़बूर कर दिया था. मैं निराशा रूपी अंधकार में गुम-सा हो गया था. कहीं से भी उम्मीद की किरण दिखायी नहीं दे रही थी. मैंने एक बार फिर से अपनी गर्दन नीचे झुका ली और आगे बढ़ रहा था. मैं जैसे ही नुक्कड़ के पास पहुंचा. मेरे पीछे से किसी लड़की ने मुझे जोर से कहा — गुड मॉर्निंग सर..

मैंने जब पीछे मुड़कर देखा तो मेरी आंखों के सामने एक सात वर्षीय लड़की थी. कमल के फूल की भांति उसका कांतिमय मुख, हिरणी जैसी वाचाल आंखें, एक प्यारी मुस्कराहट, गुलाब के फूल की पंखुड़ियों से होंठ और उनके अंदर से सफ़ेद मोतियों की माला-सी झांकती उसकी दंतावली. वाह! कितना प्यारा और कांतिमय रूप था उसका. मैं तो भावविभोर होकर उसे देखता ही रहा गया. ऐसा लग रहा था मानो कोई देवी मेरी आंखों के सम्मुख नन्हे रूप में प्रकट हुई हो. जब मैं कुछ देर नहीं बोला तो उसने मुझे दूसरी बार 'गुड मॉर्निंग' बोला. उसके दूसरे गुड मॉर्निंग ने मुझे यथार्थ जीवन में ला पटका. मैंने जब पश्चिम की तरफ़ देखा तो सूरज डूब चुका था. अचानक मुझे आभास हुआ कि यह ग़लती से शाम को गुड इवनिंग की जगह गुड मॉर्निंग बोल रही है.

मैंने उससे एक झूठी मुस्कराहट से मुस्कुराते हुए कहा – गुड मॉर्निंग नहीं बेटा... गुड इवनिंग बोलो. देखो उधर... सूरज डूब चुका है. शाम हो चुकी है. अब कुछ ही देर में

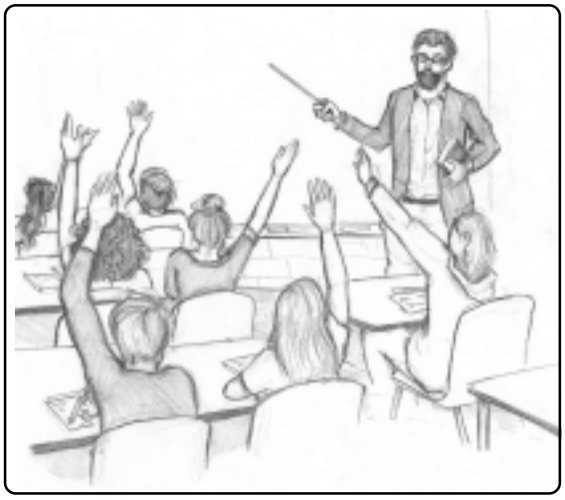

रात भी हो जायेगी और यह वक़्त शाम का है ना कि सुबह का. इसलिए गुड इवनिंग बोलो न की गुड मॉर्निंग...

— ऐसा क्या?

— हां! बिलकुल ऐसा ही. चलो अब कहो गुड इवनिंग..

— हां! हां! गुड मॉर्निंग सर...

और वह पुन: खिलखिलाकर हंस पड़ी. उसे हंसते हुए देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उसे जानबूझकर ग़लती करने में ख़ुशी महसूस हो. मेरी नज़र अचानक उसकी हाथ की घड़ी पर पड़ी तो मुझे याद आया कि मेरे गांव जाने वाली बस के निकलने में मात्र पांच मिनट ही बचे थे. मैंने क़दमों की रफ़्तार को तेज़ कर लिया. वह लड़की मेरे पीछे दौड़ने लगी. उसके कंधे पर लटके हुए बैग में से पेंसिल और पेन की आवाज़ पायल के घुंघरुओं की भांति आ रही थी. मैंने जब पीछे मुड़कर देखा तो वह मेरे बेहद क़रीब थी. मेरे साथ चलने की इच्छा ने उसे थका दिया था क्योंकि वह मेरे जितनी तेज़ नहीं चल पा रही थी. इस वजह से उसकी सांस फूल गयी. मुझे नहीं पता कि वह मेरे साथ चलने के लिए क्यों दौड़ रही थी? हालांकि मैंने तो उसे कोई चॉकलेट भी नहीं दी थी. उसे तकलीफ़ न हो इस लिए मैंने अपने क़दमों की रफ़्तार धीमे कर ली. हालांकि मेरी बस आने में मात्र दो मिनट ही बचे थे. पर फिर भी न जाने क्यों मैं उससे अनायास ही एक मोह की डोर में बंध-सा गया था. मैंने उससे बात करने के लिए उससे पूछा — अच्छा तुम यह बताओ कि तुम कौन-सी कक्षा में पढ़ती हो?

— दूसरी कक्षा में... उसने मुस्कराते हुए कहा.

— ओह! और तुम्हारा नाम क्या है?

— मेरा... मेरा नाम तो दीपिका है. मेरे पापा का नाम अभिषेक पुरोहित है. ममा का नाम सुविता है. आपको पता है... मुझे मेरी दादी अम्मा घर पर क्या बुलाती हैं? दीपू.. मेरे घर पर मेरा एक छोटा भाई भी है. उसका नाम आदि है. वह बहुत तुतलाता है. और मुझे तो हर वक़्त डिपू... डीडी, डिपू डीडी बुलाता है. और... हां..

— अरे! बस... बस... रुको बाबा. सांस ले लो.. मैंने उसे हंसते हुए कहा.

मेरे अचानक बात काटने की वजह से वह एकबारगी चुप-सी हो गयी. मुझे लगा कि उसे बुरा लग गया होगा. इसलिए मैंने स्थिति को संभालते हुए उससे पुन: अगला प्रश्न पूछा — अच्छा तुम यह बताओ तुम्हें कौन-सी मैडम सबसे अच्छी लगती हैं?

— मुझे? मुझे मरुधर मैडम सबसे अच्छी लगती हैं.

— क्यों? वो क्यों अच्छी लगती हैं? क्या वो तुम्हें चॉकलेट्स देती हैं?

— नहीं तो. चॉकलेट तो कभी-कभी देती हैं. हमेशा नहीं. पर वो हमें कभी नहीं मारती हैं और हमें कहानियां सुनाती हैं. और हां, कभी-कभी तो मेरे दोनों गालों को पकड़कर ट्विंकल-ट्विंकल लिटिल स्टार वाली पोएम भी सुनाती हैं.

— ओह! तो ये बात है, मैंने पुन: उसकी तरफ़ मुस्कुराते हुए कहा. मैं आगे उससे कुछ बोल पाता उससे पहले ही मेरे गांव जाने वाली बस का हॉर्न मुझे सुनाई दिया. मैंने उसे बिना विदा कहे ही बस स्टैंड की तरफ़ दौड़ लगा दी.

मैं जैसे ही दौड़ता हुआ बस स्टैंड पहुंचा तो मुझे पता चला कि मेरे गांव जाने वाली गाड़ी जा चुकी थी और अगली बस आने में अभी एक घंटे का वक़्त था. आकाश बादलों से घिरे होने के कारण अंधेरा छा गया. मैं पुन: अपने अतीत में खो चुका था. मुझे बारहवीं कक्षा के उन लड़कों की रंग–भेदी टिप्पणियां पुन: याद आने लगीं. लेकिन अगले ही पल मुझे दीपिका की बातें याद आने लगीं. कैसे आज वह मुझसे बातें कर रही थी? मानो वह मुझे बरसों से जानती हो. उसकी बातों से, उसका मेरे पीछे दौड़ते हुए पीछा करना और अपने घर और स्कूल की बातें बताना कितना अद्भुत क्षण था. कितना प्यारा अहसास था वो. दीपिका की बातों को याद करने से अनायास ही मेरे चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गयी. ऐसा लग रहा था मानो रेगिस्तानी ज़मीन पर बरसों से कोई पानी की बूंद गिरी हो. मैं भी तो रेगिस्तान बन गया था. मुझे तो याद भी नहीं था कि मैं आख़िरी बार दिल से कब मुस्कुराया था. आज उसने मुझे अनजाने में ही सही, अपने बचपन में पहुंचा दिया था. मैं उसके बारे में ही सोच रहा था की अचानक बस आ गयी.

मैं शीघ्रता से बस के अंदर चढ़ा और कोने की सीट पर अकेला जाकर बैठ गया. उस रोज़ मैं घर देरी से पहुंचा. लेकिन मेरी मां की इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं रही. मैंने चाय पी और अपनी कोठरी में चला गया. रात को मुझे दीपिका की बातों से कुछ हद तक दर्द को सहने में आसानी हुई. मेरे मन के नकारात्मक विचार उसकी बातों को याद करने की वजह से दूर हो गये. इस कारण मुझे शीघ्रता से नींद आ गयी.

अगली सुबह मैं हमेशा की अपेक्षा जल्दी उठ गया और तैयार होकर विद्यालय समय से पूर्व ही पहुंच गया. मुझे फिर से रंगभेदी टिप्पणियों के ख़िलाफ़ मैदान में उतरना था. लेकिन एक बार फिर मैं इस कार्य में असफल रहा. उन लड़कों की तीखी टिप्पणियों ने मुझे अंदर तक तोड़ दिया और ऊपर से ओबामा शब्द से संबोधन करने से तो मुझे हमेशा की तरह गहरा आघात पहुंचा. लेकिन मैं हमेशा की तरह निराश होने के सिवाय कुछ नहीं कर सकता था. एक बार फिर घंटी बजी और सभी बच्चे एक-एक कर विद्यालय से बाहर चले गये. मैं हमेशा की भांति निराश होकर बस स्टैंड की तरफ़ जा रहा था. मैंने अपनी गर्दन को ऊपर की तरफ़ उठाना मुनासिब नहीं समझा. मैं जैसे ही उस नुक्कड़ के क़रीब पहुंचा. पीछे से मुझे किसी ने डराया.

'भऊ...'

मैंने जैसे ही पीछे मुड़कर देखा तो मेरी आंखों के सामने दीपिका थी. पहले दिन की भांति 'गुड मॉर्निंग' के साथ... और ऊपर से वही बचपन की मुस्कराहट.

मैंने थोड़ा सा खीजते हुए कहा — क्या है यह? तुम्हें कितनी बार कहा था मैंने कल, कि शाम के समय को गुड इवनिंग बोलते हैं ना कि गुड मॉर्निंग...

— ओह! ठीक है सर. गुड मॉर्निंग सर...

और फिर वह पुन: खिलखिलाकर हंस पड़ी. मानो

उसे मेरे ग़ुस्से से कोई फ़र्क नहीं पड़ा. उसके साथ एक अन्य लड़की भी थी जो शायद उसकी दोस्त थी. वह भी ताली पीटकर हंसने लगी और उसने भी दीपिका के गुड मॉर्निंग बोलने में पूरी सहायता की. मैं कुछ देर के लिए तो उनकी हंसी से असहज हुआ लेकिन फिर मैंने भी उससे मुस्कुराते हुए पूछा — अच्छा बताओ... चॉकलेट खाओगी?

— हां! खाऊंगी ना. क्या है आपके पास?

— हां! है ना तुम्हारे लिए ही नहीं तुम्हारी दोस्त के लिए भी है. मैंने उससे मुस्कुराते हुए कहा.

— अच्छा तो दो ना फिर...

— हां! दे दूंगा लेकिन मेरी एक शर्त है?

— शर्त! कैसी शर्त?' उसने आश्चर्यचकित होकर मुझसे पूछा.

— शर्त? शर्त यह है कि आज के बाद तुम मुझे शाम को 'गुड मॉर्निंग' नहीं बोलोगी. यह वक़्त इवनिंग का है तो जान बूझकर ग़लत क्यों बोलती हो?

— हां! ठीक है अब नहीं बोलूंगी. लेकिन पहले आप मुझे चॉकलेट तो दो...

— ठीक है ये लो, मैंने अपनी ऊपर की जेब में से दो चॉकलेट निकालीं और एक उसे और दूसरी उसकी दोस्त को दे दी.

दीपिका ने उस चॉकलेट को अपने दांतों से फोड़ा और दो भागों में कर लिया. उसने उस चॉकलेट के एक भाग को मुझे पकड़ाते हुए कहा — आप भी खाओ ना.

मैं उसे मना नहीं कर पाया. हालांकि उसके मुंह का कुछ थूक उस चॉकलेट पर लगा हुआ था. लेकिन मैंने बिना इसकी परवाह किये उस चॉकलेट को खा लिया ओर जैसे ही आगे बढ़ने लगा. मुझे दीपिका की एक बात ने पुन: मुस्कुराने को मज़बूर कर दिया.

उसने चॉकलेट खाने के बाद जोर से कहा, 'गुड मॉर्निंग सर.' और फिर यह कहते हुए खिलखिलाकर पुन: हंस पड़ी. उसकी दोस्त की हंसी भी कुछ कम नहीं थी. दोनों को दुनियादारी से कोई मतलब नहीं था. सड़क पर अन्य बच्चे और लोग भी चल रहे थे लेकिन उन्हें तो बस अपने 'गुड मॉर्निंग' की चिंता थी. उन दोनों की हंसी मुझे मंत्रमुग्ध कर रही थी. कितनी निश्छल और अबोध मुस्कराहट थी उन दोनों की. पहले मुझसे गुड मॉर्निंग न बोलने का प्यार से वादा करना और फिर उसे तोड़ देना. कितना अद्भुत अहसास था. इससे भी अद्भुत तो यह था कि मुझे भी उसके वादे के तोड़ने से दुःख होने की बजाय ख़ुशी महसूस हो रही थी. मैंने उसके फिर से 'गुड मॉर्निंग' बोलने पर दोबारा नहीं डांटा. क्योंकि मुझे पता था कि वह मेरे लाख समझाने के बावजूद भी 'गुड मॉर्निंग' कहना नहीं छोड़ेगी. मैं इस दरमियान उसे ध्यान से देख रहा था. वह अपनी ही रामायण सुनाने में तुली हुई थी. आज मेरे क़दम चाहते हुए भी तेज़ नहीं चल रहे थे. क्योंकि न जाने क्यों उस अबोध बालिका ने मुझे अपनी बातों के मायाजाल में ऐसा बांध लिया कि मैं अपने आपको छुड़ाना ही नहीं चाहता था. वह मुझसे बात करने के दरमियां बार-बार ताली पीटकर हंस रही थी और साथ में अपनी दोस्त के बैग को उठाकर उसकी पीठ पर पटक रही थी. उसे देखकर मुझे लग रहा था कि मेरा भी बचपन लौट आया हो. वह बचपन जो रंगभेदी टिप्पणियों के पहाड़ तले कहीं दब गया था. मेरे बचपन की मुस्कुराहटें नीची सोच व तुच्छ नज़र वाले लोगों के द्वारा मेरे होठों के अंदर ही दबा दी गयी थीं. लेकिन अब वो मुस्कुराहटें दीपिका की वजह से शनैः-शनैः वापस आ रही थीं. मैंने भी सोचा, मुझे भी क्यों न अब दीपिका की तरह अपनी ग़लतियों पर हंसना शुरू कर देना चाहिए. लेकिन मैंने क्या ग़लतियां की थीं? मैं इस सवाल का जवाब ढूंढ़ता इससे पहले ही दीपिका ने मुझे विदा कह दिया.

मैं उस दिन भी समय पर घर नहीं पहुंच सका. रात को मुझे दीपिका की बातें फिर से याद आने लगीं. उसकी मुस्कुराहटें, उसका ताली पीटकर खिलखिलाकर हंसना, और अपनी ही बातें बोलते जाना. कितनी अबोध थी वह. कितनी नि:स्वार्थ. अन्य लोगों से कितनी भिन्न. उसने ही तो मेरे दिल की पवित्रता की पहचान की थी. वरना लोग तो मेरी शक्ल देखकर ही मेरे व्यक्तित्व को भी काला समझ लेते. किंतु वह बाक़ी के लोगों से अलग थी. अपनी ही दुनिया में मस्त रहने वाली. आख़िर मैं भी तो उसके जैसा ही तो था. जब बचपन में मुझे कोई लड़का या लड़की मेरे काले रंग की वजह से चिढ़ाता था तो मैं उल्टा उन्हीं का मज़ाक बना देता था. मैं उनसे अक्सर हंसते हुए कहता — ''मैं तो हूं कान्हा की तरह श्याम वर्ण और तुम हो भेड़िये की तरह गौर वर्ण, अब बताओ श्रेष्ठ कौन हुआ?'' और जो शख़्स मेरा मज़ाक बनाता उल्टा वही मज़ाक बनकर रह जाता. उसकी बोलती बंद हो जाती. लेकिन ज्यों-ज्यों मैं बड़ा होता गया मेरी

समझदारी भी बढ़ती गयी. समझदारी? वही समझदारी जो तुच्छ सोच के लोग मुझे सिखाते थे कि मैं काला हूं. वही समझदारी और ज्ञान की, गौरवर्ण के लोग श्याम वर्ण के लोगों से ज़्यादा ख़ूबसूरत होते हैं. वे मुझसे ज़्यादा भाग्यशाली हैं. क्योंकि भगवान ने उन्हें गोरा और मुझे काला बनाया है. अब मुझे मेरी अपनी ही मूर्खता और ग़लतियों पर हंसी आ रही थी कि मैं कितना मूर्ख था. मैं तो लोगों के द्वारा इतना बुद्धू बना दिया गया था कि जो दुनिया वे मुझे अपनी दृष्टि से दिखाना चाहते थे मैं तो बस वही देख रहा था. मुझे तो उन सबने हीन भावना में अंधा कर दिया था. मेरे स्वयं का विवेक तो कहीं खो–सा गया था और मैं अपने आपको अंग्रेज़ी विषय का एक ज्ञाता समझ रहा था. लेकिन सच तो यह था कि मुझसे ज़्यादा बुद्धिमान तो दीपिका थी जिसे अपने से मतलब था. मैं भी तो उन तुच्छ बुद्धि के इंसानों की तरह दीपिका को हर रोज़ यही ज्ञान देने पर तुला हुआ था कि जैसे ही सूरज डूब जाये तो उस वक़्त को गुड इवनिंग कहते हैं ना कि गुड मॉर्निंग. लेकिन यह सब तो उस व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह डूबते हुए सूरज को किस दृष्टि से देखता है. अगर दीपिका के लिए डूबते हुए सूरज का मतलब गुड मॉर्निंग है और वह उस वक़्त को गुड मॉर्निंग कहकर अपने हंसने का माध्यम बना सकती है तो भला मैं क्यूं नहीं? मैं क्यों लोगों के द्वारा दिये गये निरर्थक ज्ञान को ग्रहण कर रहा था. अगर लोगों की दृष्टि में गौरवर्ण का व्यक्ति ही ख़ूबसूरत है तो वह उनकी परेशानी व उनके सोचने का नज़रिया है ना कि मेरा. मेरे लिए तो श्याम वर्ण के लोग ख़ूबसूरत हैं. लेकिन मैंने तो उनकी ही मानी, न कि दीपिका की तरह अपने मन की. उसे मेरे ज्ञान से कोई मतलब नहीं था. उसके लिए मुझे शाम को गुड मॉर्निंग बोलना हंसने का जरिया था. वह तो गुड मॉर्निंग इसलिए बोल रही थी ताकि ताली पीटकर हंस सके और मैं बुद्धू उसे ज्ञान देने पर तुला था. ठीक ऐसा ही ज्ञान तो लोग मुझे दे रहे थे. लेकिन मुझे उनके ज्ञान की क्या आवश्यकता थी? जब मुझे दीपिका की भांति पता था कि शाम के वक़्त को गुड इवनिंग बोलते हैं न कि गुड मॉर्निंग लेकिन फिर भी वह उसे गुड मॉर्निंग बोल रही थी. मैं भी क्या दीपिका की तरह अपने मन की नहीं कर सकता था? क्या मैं भी लोगों पर भद्दी टिप्पणियां करने पर हंस नहीं सकता था? लेकिन बजाय हंसने के मैं तो हीन भावना से भर गया. अब मुझे निर्णय करना था कि मुझे लोगों की रंगभेदी टिप्पणियों का सामना कैसे करना है? मुझे दीपिका के गुड मॉर्निंग ने एक नयी राह दे दी थी.

अगली सुबह मैं जल्दी उठ गया. मैंने शीघ्र ही स्नान किया और मुस्कुराकर अपने बालों में तेल लगाया. मैंने जैसे ही बालों को सवारने के लिए आईना उठाया. सच कहूं तो मुझे काफ़ी वर्षों बाद अपने चेहरे पर एक ग़जब की चमक दिखी. ऐसा लगा जैसे मैं दुनिया का सबसे ख़ूबसूरत इंसान हूं. मैं अनायास ही मुस्कुरा दिया. आईने में अपने आपको मुस्कुराते हुए देखकर मुझे अपने बचपन की याद आ गयी. जब मेरे मोहल्ले की लड़कियां और महिलाएं मुझे कान्हा कहकर पुकारती थीं. लेकिन वो कान्हा समय के पहिए और तुच्छ सोच वाले इंसानों की टिप्पणियों के नीचे रौंद दिया गया था. किंतु अब मुझे दीपिका के गुड मॉर्निंग ने पुनः जीवित कर दिया था. मेरी आत्मा में एक नयी जान आ गयी थी. मैं विद्यालय भी हमेशा की अपेक्षा जल्दी पहुंच गया. मैंने पूरे दिन पूरी लगन से विद्यालय में पढ़ाई करवायी. आज मेरे अंदर एक नयी ऊर्जा थी. लेकिन जैसे ही सातवां पीरियड ख़त्म हुआ अनायास ही मेरा कलेजा बैठ-सा गया. मुझे बारहवीं कक्षा में जाना था और उन लड़कों का सामना करना था. मैंने अपने अंदर हौसला भरा और कक्षा में प्रवेश किया. मैंने चाक उठायी और श्यामपट्ट पर अपना नाम लिखते हुए सभी विद्यार्थियों से मुस्कुराते हुए कहा — मेरा नाम विवेक शर्मा है. आप सभी मुझे ओबामा भी बुला सकते हैं.

मैंने जैसे ही ओबामा शब्द का प्रयोग किया सभी लड़के-लड़कियां खिलखिलाकर हंस पड़े. कुछ ही पल बाद आगे की पंक्ति में बैठी आरती नाम की एक छात्रा ने मुझसे पूछा — ओबामा क्यों सर?

— ओबामा? ओबामा इसलिए क्योंकि मैं उनकी तरह श्यामवर्ण का हूं, मैंने उससे मुस्कुराते हुए कहा.

मेरा ऐसे बोलते ही पीछे की कतार में बैठे तीन लड़के खड़े हुए और मेरे पांव पकड़कर माफ़ी मांगते हुए बोले — वी आर सॉरी सर. हमें माफ़ कर दो. हमने आपका बहुत मज़ाक बनाया. प्लीज़ सर हमें माफ़ कर दो.

उन तीनों की आंखों में पश्चाताप के आंसू थे. मैंने स्थिति को संभालने के लिए उनसे मुस्कुराते हुए कहा — अरे! इसमे माफ़ी मांगने वाली कौन-सी बात है? मुझे तो बहुत ख़ुशी हो रही है कि आपने मेरा उपनाम ओबामा रखा.

काश! मैं उनके जितने गुणों वाला इंसान होता. अगर उनके जितने गुण न सही तो उनके मात्र दस प्रतिशत गुण भी मेरे अंदर होते तो मेरा जीवन तो धन्य हो जाता.

आज मैंने बोलना जारी रखा. न जाने बरसों की टीस कैसे शब्दों के माध्यम से बाहर आ रही थी. आज मेरा एक-एक शब्द उन सभी विद्यार्थियों को रुलाने के लिए काफ़ी था. जिन विद्यार्थियों ने मेरा आकलन मेरे काले रंग से किया था. उन सब में आत्मग्लानि का भाव था. उन सबमें मुझे नज़र ऊपर उठाकर देखने की क्षमता नहीं थी. मेरे प्रति किये गये इस दोगले और भेदभाव पूर्ण व्यवहार के पश्चाताप के आंसू प्रत्येक विद्यार्थी की आंखों में झलक रहे थे. पूरी कक्षा में सिर्फ़ मेरी ही आवाज़ गूंज रही थी. मैंने भी उन सबको दिल से माफ़ कर दिया. आख़िर वे सब मेरे ही तो विद्यार्थी थे. वे नासमझ भी थे लेकिन आज उन्हें ज्ञान हो गया था कि वे पिछले काफ़ी दिनों से ग़लत कर रहे थे. उन तीनों विद्यार्थियों के अलावा भी सभी विद्यार्थी मुझसे माफ़ी मांग रहे थे. इस लिए मैंने सब से मुस्कुराते हुए बस एक ही पंक्ति बोली...

— अरे! रोना बंद करो. ओबामा ख़ुश हुआ.

मेरे इतना कहते ही सभी विद्यार्थी खिलखिलाकर हंस पड़े. मैं भी अपने आपको हंसने से रोक न सका. आज मैं भी बहुत ख़ुश था. शीघ्र ही घंटी बजी और सभी विद्यार्थी अपने-अपने घरों की तरफ़ जाने लगे. मैं भी बस स्टैंड की तरफ़ बढ़ने लगा. आज मेरे क़दमों की रफ़्तार तेज़ थी. मेरे अंदर जीत की ख़ुशी थी. आज मैंने अपनी नकारात्मकताओं और मेरे मन में मेरे काले रंग के प्रति उपजी अपनी हीन भावना के ऊपर जीत पा ली थी. आज मैं गर्व से सर ऊपर करके चल रहा था. मानो मैं ही इस दुनिया का सबसे ख़ूबसूरत इंसान हूं. मैं ख़ुशी-ख़ुशी आगे चलता हुआ जैसे ही नुक्कड़ के पास पहुंचा. मेरे पीछे से किसी ने जोर से आवाज़ दी.

— गुड मॉर्निंग सर...

मैंने जैसे ही पीछे मुड़कर देखा. मेरी आंखों के सामने दीपिका थी. वही सात वर्षीय दीपिका. जिसका कमल के फूल की भांति कांतिमय चेहरा, हिरनी की जैसी वाचाल आंखें, गुलाब के फूल की पंखुड़ियों से उसके होंठ, और उनके बीच में से सफ़ेद मोतियों की माला-सी झांकती उसकी दंतावली. लेकिन अचानक उसके चेहरे में हुए एक छोटे से बदलाव ने मुझे मुस्कुराने को मज़बूर कर दिया. मैंने उससे मुस्कुराते हुए कहा — अरे! ये क्या दीपिका तुम्हारा एक दांत कौन ले गया?

— ये... ये दांत तो कल शाम को टूट गया. आपको पता है मेरी दादी अम्मा ने क्या कहा कल मुझे?

— नहीं तो. क्या कहा?

— मेरी दादी अम्मा ने कहा कि मैं अब बूढ़ी होने लगी हूं तो इस कारण अब मेरे धीरे-धीरे सारे दांत टूट जायेंगे.

उसके इतना कहते ही हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े. उसकी दोस्त के चेहरे पर भी मेरी तरह ही मुस्कराहट थी. आज हम तीनों ख़ूब हंस रहे थे. हमें किसी से कोई मतलब नहीं था. बस हंसने से मतलब था. चाहे झूठ का सहारा ही क्यों ना लेना पड़े. हालांकि मैं तो इतना भी नहीं जानता कि क्या दीपिका बूढ़ी हो रही थी?

ग्राम व पोस्ट : सीतसर, तहसील रतनगढ़,
जिला : चुरू (राज.) ३३१५०६.

ग़ज़ल

✍ **कुमार नयन**

पूछ रहे हैं ज़ख़्म है कैसा आकर मेरे आंगन में,
जिनके हाथों ने फेंके हैं पत्थर मेरे आंगन में.
बिखरा देता है घर का सामान बड़ी बेदर्दी से,
आता है जो तेज़ बवंडर अक्सर मेरे आंगन में,
कहता है फ़ुटपाथ है बेहतर फिर उठ कर चल देता है,
जब कोई आता है रहने बेघर मेरे आंगन में,
पलभर की बरसात मुझे सैलाबज़दा कर जाती है,
चूता है हर पास-पड़ोस का छप्पर मेरे आंगन में,
जितना भी कुछ लाओ खटकर कौन निगल जाता है सब,
छुपकर रहता हो जैसे इक अजगर मेरे आंगन में,
कीचड़ में लिपटे उनके पैरों की ख़बरें ख़ूब छपीं,
मुखिया जी जब आये पैदल चलकर मेरे आंगन में,
भूख उदासी दर्द ग़मों की रहती है इक फ़ौज खड़ी,
रोज़ मिरी होती है जिससे टक्कर मेरे आंगन में,

ख़लासी मुहल्ला,
पो. जिला- बक्सर (बिहार) -८०२१०१.
मो. ९४३०२७१६०४.

ओलों की बरसात

✍ डॉ. गोपाल नारायण आवटे

जन्म : १५ अगस्त
बी. एस. सी. एवं आयुर्वेद रत्न
जावरा, जिला-रतलाम (म. प्र.)

: रुचि :
पर्यटन, सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेना एवं संगीत सुनना, लेखन एवं पत्रकारिता करना.

: विशेष :
पुरातत्व शोध कार्यों में विशेष रुचि तथा आदिम जन जातियों, लुप्त होते शब्दों पर शोध, लुप्त होती प्रजातियों के संरक्षण एवं इन पर शोध करने में रुचि, फिल्मी पटकथा लेखन में रुचि.

भोलाराम की घरवाली ने नाराज़ी भरी आवाज़ में घरवाले से कहा — 'घर में कुछ खाने को बचा नहीं है, बड़े पटेल से अपनी मजूरी तो लेते आओ.'

भोलाराम ने बीड़ी का आख़िरी कश खींचा और धुंआ बाहर निकालते हुए कहा — 'तीन बेर तो हो आया, कोई न कोई बहाना बनाकर भगा देता हैं.'

— 'मेहनत की है कोई भीख़ मांगने तो जा नहीं रहे — थोड़ी कर्रयाई करो तब गांठ ढीली करके वह रुपया देगा.' घरवाली ने समझाया.

— 'पिछली बार भी तेरी बात पर अमल किया था - 'क्या मिला था जूते, चप्पल, लातें.'

— 'फिर क्यों जाते हो उसके खेत पे?'

— 'दूसरा कोई मजूरी देता भी तो नहीं है.' उसने उदास आवाज़ में कहा था.

लीला बाई मुंह ही मुंह में बड़बड़ाने लगी थी — 'करमजलो का जब भी काम होत है तो पचासों चक्कर लगात है, जब काम निकल जात है तो पलट कर नहीं आता. अरे इस बरस की मेहनत अगले बरस दोगे तो खायेंगे क्या? इतना भी नहीं मालूम यहां गांव में तुम्हारे आसरे ही तो पड़े हुए हैं...' फिर अपनी आवाज़ को स्पष्ट करते हुए उसने घरवाले से फिर कहा — 'देखो तुम तो हिसाब कर लो और हम ये गांव छोड़कर कहीं शहर में बस जायेंगे.'

— 'क्या बाप ज़मीन छोड़ गया है शहर में? भोलाराम ने नाराज़ी भरे स्वर में कहा.

— 'सड़क किनारे पड़े रहेंगे लेकिन जो मजूरी करेंगे उसका रुपया उसी दिन तो मिल जायेगा.' पत्नी ने कहा.

— 'ठीक है विचार करेंगे,' कहकर भोलाराम झोपड़े से बाहर निकल आया. घरवाली ने फिर पीछे से टोक कर कहा — 'पटेल के घर हो आना...'

भोलाराम जैसे ही अपने टोले से बाहर निकला हवा के मस्त झोंके ने उसका स्वागत किया. फागुनी हवा ने मौसम में मस्ती घोल दी थी लेकिन जेब में कच्ची, पौआ पीने के लिए धेला भर भी नहीं था. गांव में कच्ची ही मिलती है लेकिन पिछला बकाया अभी तक उसने नहीं चुकाया था सो नयी उधारी वह कैसे दे देता? अपनी इच्छा को मन में मार कर आगे बढ़ा ताकि कहीं कोई खेत पर काम मिल जाता. वैसे भी चने की फ़सल खड़ी थी, एक दो दिनों में कटाई

होने वाली थी तब तक के लिए कोई उधार दे देता तो उसके घर का चूल्हा जल जाता, लेकिन ग़रीब अपने आंसू किसके कांधे पर रखकर बहाये?

घरवाली कह रही है गांव छोड़ दो — अरे ये गांव क्या ऐसे ही बस गया होगा? यहां कितनी मुश्किलों से एक घर बसा होगा और फिर धीमे-धीमे पूरा गांव बसा होगा. पटेल का घर बना होगा, उनकी सेवा के लिए हमें भगवान ने बनाया होगा. उन्हीं की दी ज़मीन पर हमारा टोला बना है उन्हीं की मदद से परिवार में हमारे यहां ब्याह-शादी होते हैं, शहर में कौन रखा है जो हमारे फटे को देखेगा? ये कहती है गांव छोड़ दो... अरे ऊंच-नीच किसके घर में नहीं होती है, ये बड़े लोग भी तो बड़ी लागत लगा कर फ़सल बोते हैं फिर उसका फ़ायदा भी अधिक उन्हीं का होता है. मज़दूरी तो फ़सल आने पर मिल ही जाती है. चने की फ़सल में लगी खरपतवार उखाड़ने के लिए उसका पूरा परिवार लगा था. ठंड की सुबह में कुनकुनी धूप कितनी प्यारी लगती थी. हाथों में अनायास ही खारापन आ जाता था. नन्हें-नन्हें चने के पौधे और उसकी छोटी-छोटी टहनियां शाम को उसी को तोड़कर भाजी भी बना लेते थे. पिछले एक दो बरसों से फ़सलें ख़राब हो रही हैं. पिछले दिनों इल्लियां लग गयी थीं — अरे बाप रे कितनी इल्लियां थीं, ज़हर डाल-डालकर कर मरे जा रहे थे लेकिन इल्लियां तो जैसे अमृत पीकर आयी हों — खेतों से निकल कर हमारी बस्ती में और फिर टोलों में पहुंच गयी थीं. चारों ओर सिर्फ़ इल्लियां ही इल्लियां थीं, उस पर भी रोते-गाते बेचारे पटेल ने सबकी मज़दूरी दी थी.

एक बार तो अकेले पटेल साहब बैठे थे, मैं पांव लागी कहकर उनकी खटिया के पास जा बैठा था.

मैंने पूछा था — 'पटेल साब बड़े उदास हो, का बात है?'

— 'का कहें...' पटेल साहब ने ठंडी सांस खींच कर कहा था.

— 'कहे से मन हल्का हो जाता है.' मैंने कहा था.

— 'अरे तुम देख तो रहे हो, खेती घाटे का सौदा हो गया है. सोच रहा हूं कि सब कुछ बेच कर शहर चला जाऊं.'

— 'अरे ये आप क्या कह रहे हैं? अरे आप शहर चले जायेंगे तो हम लोगों का क्या होगा? ऊपर भगवान और नीचे आप हमारे प्राणदाता हो.' मैंने पांव छूते हुए उनसे कहा था.

— 'अरे भोला कितना घाटा सहेंगे... दो साल की फ़सलों में लागत नहीं निकली, ख़र्चा वही का वही. वही बीज की क़ीमत, वही खाद खतौड़ा, वही बिजली का ख़र्च, पानी का ख़र्च, कहां से सब करें, फिर तुम लोगों की मज़दूरी भी बढ़ गयी है. हम तो सोच रहे हैं ये फ़सल लेकर कहीं शहर में छोटा-मोटा कारोबार करेंगे.' पटेल साहब ने उदासी भरे स्वर में निर्णय सुना दिया था.

— 'मालिक आपसे हम लगे हैं, बाप दादाओं की ज़मीन ऐसी बेची नहीं जाती, मालिक आप तो शेर की सवारी पर हैं कभी उतर ही नहीं सकते.'

— 'यही तो रोना है यदि उतरेंगे तो शेर खा लेगा, मज़बूरी में बैठे हैं, लेकिन भोला आख़िर कब तक पूरे परिवार को झूठा दिलासा देंगे? बड़ा बेटा शहर चलने की ज़िद कर रहा है यदि ये चने की फ़सल नहीं ले पाये तो पक्का जानों हम शहर चले जायेंगे. पटेल साहब ने अपना फ़ैसला सुनाते हुए कहा.

— 'ऐसा मत कहो मालिक. इस बार तो चने की फ़सल और गेहूं की बढ़िया फ़सल आयी है, कहीं से भी कम नहीं है, भगवान के घर अंधेर नहीं है.' भोला ने दिलासा देते हुए कहा.

— 'देखो का हुए.' पटेल साहब ने ठंडी सांस भर कर कहा था.

उसने मन ही मन विचार किया था उसे तो पूरे परिवार की मज़दूरी नहीं मिली वह भारी पड़ रही है, पटेल साहब को तो पूरे टोले की मज़दूरी चुकाना है, वह भला कैसे सब व्यवस्था करते होंगे? आख़िर आदमी कितना घाटा सह पायेगा? हम लोग तो पेंच पीकर गुज़ारा कर लेंगे लेकिन वो लोग तो बड़े आदमी हैं सब्ज़ी-रोटी तो खायेंगे ही. वह खेतों खेत मेड़ों पर चक्कर लगा रहा था. फ़सल बहुत ही बढ़िया आयी थी. पटेल साहब से कुछ रुपये उधार लेकर पूरे परिवार के लिए कपड़े भी कर लेगा, उसने मन ही मन विचार किया था. अचानक पटेल साहेब पर उसकी नज़र गयी, वह भी एक दो सेवकों के साथ खेतों में खड़ी फ़सल को देखने आये थे. उन्होंने भोलाराम को देख लिया था, वहीं से बोले — 'क्यों रे कैसे घूम रहा है?'

— 'मज़दूरी खोज रहा था.'

— 'एक दो दिन रुक जा बस खेत की कटाई लगे जा रही है.'

लघुकथा

खून तो सिर्फ़ उसका ही लाल था

राज कमल सक्सेना

शहीद पुत्र का शव घर लाया जा चुका था. पिता की आंख़ें नम लेकिन सीना गर्व से तना हुआ था. परिवार के लगभग सभी लोगों की फिलहाल यही स्थिति थी. समाचार-पत्रों में भी वर्माजी के शहीद पुत्र के साहसी कृत्य की भूरी-भूरी प्रशंसा की गयी थी।

शव पर श्रद्धा के फूल चढ़ानेवालों की कमी नहीं थी. सांसद, विधायक, कमिश्नर, कलेक्टर सभी ने देश के इस वीर सपूत को श्रद्धा सुमन अर्पित किये.शवयात्रा में बेतहाशा भीड़ थी. गगनभेदी नारों के साथ शवयात्रा शुरू हुई. जाने-अनजाने सभी शवयात्रा में शामिल थे. कहा जाता है कि बुढ़ापे में जवान बेटा चला जाये इससे बड़ा दुःख कोई और नहीं होता. वर्माजी ने इस दुःख को सहन करते हुए पुत्र का अंतिम संस्कार संपन्न किया. अचानक हुए इस वज्र-घात को मां-बाप कैसे झेल रहे थे,वो ही जानते थे.

शुद्धि का दिन था--

'अम्मा, इन बच्चों के लिए बाज़ार से कुछ नाश्ता मंगवा लो. खाने में दो-तीन बज जायेंगे. सब दामाद लोग भी कुछ खा लेंगे. इतने दिन हो गये उबले आलू और काली दाल खाते.' वर्माजी की सिर चढी आधुनिक पुत्री ने कहा.

'और क्या अम्मा,अब जो होना था वो हो गया. भली बात तो यह रही कि उसकी शादी नहीं हुई थी, वरना आज बीबी बच्चों का क्या हाल होता, कौन संभालता उन्हें?' बड़े पुत्र ने अपनी मां को समझाते हुए कहा.

मुआवजे की मोटी रकम भी शहीद राजन के भाई-भौजाइयों, बहन-बहनोइयों को पिछले दस दिनों से बेचैन किये थी। 'कितना मिलेगा ?', 'इतना तो कम से कम मिलना ही चाहिए?' आदि-आदि. जितने मुंह उतनी बातें. कुल मिलाकर मुआवजे के रूप में मिलनेवाली मोटी रकम चर्चा का मुख्य विषय रही थी.

कोने में पलंग पर पड़ी राजन की मां सब सुनती रही. मन पर पुत्र-विछोह का ढाई मन का बोझा लिये. वो सुनती रही अपनी आधुनिक औलादों की प्रतिक्रियाएं. उन औलादों की प्रतिक्रियाएं जिन्हें उसने अपनी कोख़ से पैदा किया था.

शोक की गहन पीड़ा में वो सोचने और अनुभव करने लगी कि एक ही कोख़ से जन्मे बच्चों के ख़ून में कितना अंतर हो सकता है? ... ख़ून कितना सफ़ेद हो सकता है, और कितना लाल?

और फिर आंखों से बहते झर-झर आंसुओं ने मन ही मन औलादों के बीच एक लकीर खींच दी. वो धीरे से बुदबदायी — 'खून तो सिर्फ़ उसका ही लाल था.'

१०४-कुटुंब अपार्टमेंट, बलवंतनगर, थाटीपुर मुरार, ग्वालियर (म. प्र.)-४७४००२.

— 'मालिक तब तक पेट की आग को का हुए?'

— 'अरे भोला तुम लोगों को भूख बहुत लगती है, ये ले पचास का नोट, परसों से पूजा पाठ के बाद कटाई लगा रहे हैं.' पटेल साहब से पचास का नोट ले लिया और उल्टे पांव झोपड़े पर लौटने लगा तब ही उसकी इच्छा कच्ची पीने की हो आयी. वह सीधे कच्ची दारू वाले के झोपड़े पर पहुंच गया. एक अध्धी मांगी और वहीं बैठकर पीने लगा, शेष रुपये दुकानदार ने लौटाए ही नहीं, पुरानी उधारी में उस नोट को रख लिया था. भोला को इससे कोई फ़र्क भी नहीं पड़ा, पेट में महुए की दारू जो पहुंच चुकी थी. उसे पूरा वातावरण ही होली के रंगों-सा भरा भरा लग रहा था. घर पहुंचा तो घरवाली ने एक नज़र में ही जान लिया कि भोला दारू पीकर लौटा है. उसने पचासों बातें सुनायीं. वह जान गयी थी कि मालिक ने रुपया दे दिया होगा लेकिन क्या करती? पेट की दारू निकलवा भी लेती तो उसका क्या करती? आम की गुठली को पीस कर पकाया था उसी को थाली में परोस दिया. उसने उसे नशे की हालत में खा लिया और वहीं करवट लेकर नशे में सो गया.

भोलाराम बिलकुल बेफ़िक्र सो रहा था, उसे बिलकुल चिंता नहीं थी कि परिवार में किसने क्या खाया, क्या नहीं खाया.

शाम को उसकी नींद खुली तो उसे ऐसा लगा रात हो चुकी हो, बाहर काले-काले बादल आ गये थे, तेज़ हवा चल रही थी, बिजली चमक रही थी. वह एकदम से उठ बैठा, घबरा कर उसने अपने झोपड़े का दरवाज़ा बंद कर लिया. उसकी घरवाली और बच्चे भी उसके पास आ गये थे. सब भगवान से हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रहे थे कि वह मौसम को आगे बढ़ा दे, हमारे गांव की रक्षा कर वर्ना हम भूखे मर जायेंगे. थोड़ी देर बाद हवा कम हुई और बिजली की तेज़ कड़क गूंजी और छोटी-छोटी पानी की बूंदें गिरना चालू हो गयीं और देखते-देखते छोटे-छोटे मसूर के दाने समान ओले गिरना चालू हो गये और फिर आम की गुठली जैसे ओले गिरने चालू हो गये. उसका पूरा परिवार थर्र-थर्र कांप रहा था — हे भगवान कहां जायेंगे? किसके खेत में मज़दूरी मिलेगी? अब तो गांव में भी कोई देने वाला नहीं हेगा, तो क्या गांव इस बरस छोड़ना ही होगा? यही सब वह सोच रहा था और ओले लगातार बरस रहे थे. पूरे बीस मिनटों के बाद हवा बंद हुई, ओले बरसना बंद हुए, देखा बाहर सफ़ेद चादर बिछ गयी थी. ऐसी बर्फ़ आसमान से गिरते हुए उसने पहली बार देखी थी. उसे बार-बार अपने मालिक का ध्यान आ रहा था, हे भगवान फिर उन्हें बड़ा घाटा लग गया, अब वे गांव की ज़मीन ज़रूर बेच देंगे. उसने और उसकी घरवाली ने अपने बच्चों को झोपड़े में छोड़ा और बाहर निकले. पीपल के पेड़ के नीचे सैकड़ों बगुले मरे पड़े थे, दोनों अपने मालिक के खेतों की ओर गये, देखा चने की खड़ी फ़सल पूरी तरह ओलों से ढक गयी थी. एक पेड़ के नीचे मालिक उदास चेहरा लिये बर्बाद हुई फ़सल को देख रहे थे, उन्होंने भोला को देखा और कहा — 'क्यों रे भोला तू तो कह रहा था कि फ़सल अच्छी हुई, देख लिया-अब इसे क्या काटूं? क्या ढोर जानवर को खिलाऊं? उसे तो सकेलना (एकत्र) भारी पड़ेगा — क्या मज़दूरी दूंगा?' कहते–कहते मालिक की आवाज़ भीग गयी थी फिर उन्होंने कहा — 'ये ओला पिघल जाये तो चना सकेर लेना, ये तेरी मज़दूरी और वही खेत की सफ़ाई समझ लेना — 'कहकर अपने अंगोछे से आंसू पोंछते वह आगे बढ़ गये, उन्हें जाते हुए भोला और उसकी घरवाली देखते रहे.

दोनों ने रात बड़ी मुश्किल से काटी. सुबह पूरा परिवार उठकर खेत की ओर गया. खेत में कीचड़ भरा हुआ था, चने की खड़ी फ़सल ज़मीन पर आड़ी हो गयी थी उन्होंने उसे साफ़ करना प्रारंभ किया. चने को मिट्टी सहित उसकी टहनी से अलग किया और पूरा परिवार ये काम पूरे सप्ताह भर करता रहा. खेतों को साफ़ करने के लिए गांव वालों ने जानवर भी छोड़ दिये थे. बच्चे जानवरों को भगा रहे थे और वह तेज़ी से चने की घेंटी को तोड़-तोड़ कर पौधे से अलग कर रहे थे. सात आठ दिनों की मेहनत के बाद लगभग तीन बोरों से अधिक चने उन्होंने इकट्ठे कर लिये थे. भोला की घरवाली ने उन्हें धोकर सुखा लिया था, बरसात की पूरी व्यवस्था हो गयी थी. तीन बोरे चने देखकर पूरा परिवार ख़ुश था. रात को भोलाराम ठीक से सो नहीं पाया. एक ही विचार मन में आ रहा था — गर पटेल साहब गांव छोड़कर चले गये तो हम मज़दूरी करने कहां जायेंगे? उसके कानों में पटेल साहब की आंसुओं से भरी आवाज़ सुनाई दे रही थी. उनकी पूरा लागत का एक बड़ा हिस्सा हम ले आये — छी: हम में और कमीनों में फिर क्या फ़र्क रह गया? सुबह उसने घरवाली से सलाह की और सिर पर दो गठरियों में चने को बांधकर मालिक के दरवाज़े जा पहुंचा. मालिक दालान में मिल गये.

— 'क्यों रे क्या लाया है?'

— 'मालिक खेत का चना बीना था सो आधा लाया हूं.'

— 'अरे पगले इसका मैं क्या करूंगा? उसे तू ही रख ले, फिर इस बार तो शहर में ही जा रहे हैं.'

—'ऐसा मत कहो मालिक... पचास-साठ सेर चना और रखा है, वह भी ला देंगे लेकिन आप गांव छोड़ने का फ़ैसला बदल लो.' कहकर उसने पांव पकड़ लिये और जोरों से रो पड़ा.

पटेल साहब खड़े थे, वह विचार नहीं कर पा रहे थे कि क्या इतने सहृदय और मेहनती-ईमानदार व्यक्ति उन्हें फिर गांव छोड़कर जीवन में कभी कहीं मिलेंगे? उन्होंने भोला को उठाया और कहा — 'एक शर्त पर हम शहर नहीं जायेंगे?'

— 'कहिए मालिक.'

— 'ये चना तू वापस ले जा, हम कभी शहर नहीं जायेंगे.' कहते–कहते मालिक ने अपने आंसुओं को पोंछा और अंदर चले गये.

भोला और उसकी घरवाली हैरत से उनके फ़ैसले को सुनकर वहीं गठरी के पास चुपचाप बैठे के बैठे रह गये.

सोहागपुर,
जि. होशंगाबाद (म. प्र.) - ४६१७७१.
मो. : ८५१७१९४०८९

आमने-सामने

दर्प की मीनार से दैन्य के घर ताका-झांकी

✍ श्याम सुंदर निगम

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव और डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है श्याम सुंदर निगम की आत्मरचना.

दुर्दिनों से मुठभेड़. मुड़-मुड़ कर आते ससुरे...हंसते, ठोकर मारते, कभी रुके रहते... कभी कुछ दिन के लिए दूर हो जाते. बहुत दूर नहीं... क्योंकि फिर से आना ही होता उन्हें, पूरी हृदयहीनता के साथ...जैसे कि मेरे वे 'दिन' उनका 'अंजुमन'. कोना-कोना छानते, चोट करने के बहाने ढूंढ़ते. यह एक सच है.

फिर दूसरी तरफ़ मेरा गांव जिसने मुझे अब तक नहीं छोड़ा और न उसे छोड़ने का मेरा मन होता है. मैं अपनी रचनाओं में प्रायः इसे 'प्यारेपुरवा' करके स्मरण करता हूं. विपन्नता का भी सम्मान होता है, यहां की इमली-गुड़ आत्मीयता ने ही जताया. पता ही न चलता कि मेरे घर का चूल्हा कैसे जलता, जबकि न लकड़ियां, न कंडा-फूस, न आटा, न दाल... पर इस गांव ने भूखे तो कभी सोने ही न दिया. तब था ये जब पास में ज़हर खाने के पैसे न थे.

तीसरा सच कि मां बड़े जीवट वाली रहीं. मुसीबत कैसी भी हो बिना लड़े तो हारना ही नहीं होता उन्हें. ...पढ़ाई-लिखाई के नाम पर तो एक अक्षर भी नहीं पहचानतीं फिर भी रेखागणित और इतिहास की क़िताब... जो मांगो, उठा लाती थीं. भोली इतनी कि सीताराम-सीताराम का जाप करतीं और सिंहासन पर बैठे होते माखनचोर लड्डूगोपाल. विकट और अडिग आस्था वाली मां. मेरी थीं, सब की होती होंगी. कभी-कभी किटकिटा कर कहतीं 'बुबुआ! जी लगाकर पढो... पढ़कर जज्ज बनना... और दुनिया के सारे के सारे नशेड़ियों-गंजेड़ियों को फांसी चढ़ा देना...' यह उनकी टीस थी...पिता ने कई दिनों तक नशा न मिलने पर ही तो त्यागे थे प्राण. भरे जंगल में. यमुना नदी के लोहे के पुल पर लेटे-लेटे. न दो गज जमीन... न दो-चार मन लकड़ी... पुल पर से ही ढकेल दिया गया था... झम्म... जमना मैया ने लोक लिया और अपने भीतर उन्हें जगह दे दी.

बड़ी अम्मा ऐसा ही बताया करती थीं. मैं तो केवल

श्याम सुंदर निगम
(कवि, कथाकार, समीक्षक, संपादक)

जन्म : १५ अगस्त, १९४६ बहरौली, (कानपुर-देहात) उ. प्र.
शिक्षा : एम. ए., एल. एल. बी.
भारतीय रिजर्व बैंक अधिकारी (२००३ से सेवा-निवृत)
सक्रिय लेखन : १९८५ से,
प्रकाशित कृतियां : मोड़, इम्तिहान (कथा–संग्रह); जंगल का तापमान, खदबदाहट (कविता-संग्रह), अनुकथन, पहरुए, भीतर धाम बाहर छांव (समीक्षा), कुछ उपमेय कुछ उपमान. पत्रकारिता प्रदीप 'प्रताप, 'मेरी कविता मेरा कानपुर', (संपादन), स्मृति मंजूषा – 'प्रार्थना' का संकलन एवं संपादन .... संपादन : 'निमित्त' साहित्यिक संवाद की पत्रिका (स्थगित).
प्रकाश्य : 'मेरे असत्यापित सत्य' आत्मकथा.
तुकबंदी (मेरी गेय रचनाएं), मेरी लंबी कविताएं.
संकलन एवं संपादन : साहित्य और साहित्यकार ...से....तक (हिंदी कोश).

दस महीने का ही था उस समय... उनके लिए रो भी न सका होऊंगा.

प्यारेपुरवा के सभी लोग मां को 'जिया' बहन कहते, मानते भी. और मैं सब को मामा. ऐसे मामा जो दुलार भरी कड़ी नज़र रखते मुझ पर. स्कूल से वापस आते, गांव में घुसे नहीं कि सवाल रोज़-ब-रोज वाले, कि लाल! आज क्या पढ़ाया गया... कितने नंबर आये...जमालपुर वाले लौंडे के नंबर कम हैं कि ज़्यादा, घर पंहुचते तो अम्मा घंटी बजा देतीं. 'बस्ता धर उधर, हाथ मुंह धो ले, कुछ पेट में डाल ले फिर देख तो ये बकरियां कब से भूखी–प्यासी मिमिया रही हैं. मैं भी कोई अपनी एक क़िताब, प्रायः संस्कृत के रूप-धातुरूप वाली, पकड़ लेता एक हाथ में, दूसरे में लग्गी और पीछे-पीछे चार-पांच बकरियां, कोई अपनी नहीं थी, सब की सब बच्चा बटायी पर. जी..! शीला, डाबी, पाही के साथ-साथ मेरी रोज़ की रोटी का जुगाड़. इनका दूध, दूध से खोया, साप्ताहिक बाज़ार क़स्बे की गांव के किसी बड़े के साथ जाना होता... खोया बेचना, घर का पुड़िया-पुड़िया सामान... सामान भी क्या... नमक डली वाला, खड़ेलाल मिर्च, अम्मा की चुनही तंबाकू, पटरे का जांघिया वाला कपड़ा, कभी-कभी अपने लिए लइया पट्टी...

उन दिनों दोनों बराबरी से ताल ठोकते रहे, एक दूसरे को आजमाते रहे, न दुर्दिन महाराज टारे-टरे न हम हारे, न हरा पाये गये.

रेख निकली तो एक शर्मीली हुमस भीतर से...उसके पहले किशोरवय की कुलबुलाहट. अच्छी लगने लगी थीं कसाढ़ी और बाल्टी में कुइयां से घर पानी ले जाती दो चोटियां... पर ये सब तो थीं मामा लोगों की बिटियां. यानी बहनें ही हुई हमारी... तो बस अच्छा लगना, दूर-दूर से देखना. वैसे अम्मा की दोनों आंखें मेरी पीठ पर चिपकी ही रहतीं... कबड्डी, बैजल्ला खेलने में किससे मुहांछायीं हुई, और कौन बेईमानी कर के जीता... सब मां के पास पहले... बहुत चौकन्ना रहतीं मेरे बनने-बिगड़ने-बहकने को लेकर. मेरे भी ध्यान में यह बना ही रहता कि जिस किसी दिन सूरज ढलने के पहले घर न पहुंचा तो फिर नीम के हरी गोजी... ग़ुस्से से जलती मां और फिर मेरा कोई सही बहाना भी देर तक बाहर रहने का तर्क काम न करेगा. भीतर ही भीतर सुनाई देती सटासट की आवाज़ और मेरा हुसकना-सिसकना... ज़ोर से रो भी नहीं सकता था. यानी कि उन दिनों न हंसना अपने मन का, न रोना रोने की तरह का... ज़िंदगी इम्तिहान लेती रही.

आज अम्मा की एक छोटी फ़ोटो पूजा के स्थान पर रख दी है, जहां उनके वाले बालगोपाल आज भी बैठे हैं. पूजा क्या, फूल-जल-चंदन और भोग के बताशे... सब मशीन की तरह होता है! पर मन सवाल करता है कि यही हैं अम्मा जिनकी दवा ले कर देने में तुम्हें दफ़्तर की देर होती थी, यही अम्मा हैं जिनने तुमको ही नहीं तुम्हारी पत्नी को भी बेटी की तरह स्कूल-कालेज़ में पढ़ाया. गर्व महसूस करतीं कि हमारी छोटी बहुरिया सोलह दर्ज़ा पास है, और ट्रेनिंग भी कर ली.

अम्मा दिन में तीन चार बार नहातीं. गुसलखाने जाना होता हाथ पैर धोतीं, धोती-कपड़े बदलतीं, दम निकाल देने वाली जैसी दमा की बीमारी की परवाह न करतीं. एक दिन ग़ुस्से में तुमने इन्हीं के ऊपर ड्रम का ठंडा पानी... वाह रे ग़ुस्सा! तो क्या हुआ! ग़ुस्सा और खरखरा स्वभाव, खरी-खरी कहने की टेंव अम्मा ने ही दी. अब पूजा के स्थान पर बैठाई छोटी–सी उनकी फ़ोटो तमाम बड़े सवाल करती है और मुसीबत पड़ने पर आज भी जब मैं उनसे कुछ पूछता हूं तो जवाब भी देती है. अम्मा आज भी रास्ता बताती हैं. दुनिया भर की चुटुर-पुटुर उनकी गिरस्ती में... गांव गयी थीं. वापस लौट रही थीं. काले तिल, गुड़, चावल. पर, ट्रेन से उतरी थीं, पैरों-पैरों घर आने के लिए. मगर ये क्या...!! वो तो बिना पैरों के चली गयी उस घर...

यह सब कथन आज आत्म-दैन्य से भरा लगता है. लगता है, मैं आज जहां हूं वहां होने का दर्प है. दर्प कि देखो लोगों! क्या था ये श्यामसुंदर और क्या होकर रहा बैंक अफ़सर एस. एस. निगम! और अब आज दादा श्यामसुंदर... साहित्यकार साथियों से मिला अकूत प्यार-स्नेह-सम्मान. ये सब भी गौड़. आत्म अन्वीक्षण करता हूं तो लगता है कि कुछ भी तो नहीं घटा वैसा, जैसा सपना देखा होगा. जैसी योजना बना कर चलने की सोची होगी... जो हुआ बिना सोचे जैसा हुआ. जिसने तोष... अमित तोष दिया वह रहा मेरा कवि मन, मेरा कहानी-कहानी सा जीवन.. जिसने साहित्य-सृजन का रास्ता दिखाया और मुझे स्वयं को परिमार्जित कर पाने के अवसर दिया.

पयारेपुरवा का ऋण अपनी कविताओं और कहानियों के माध्यम से ही उतारने की कोशिश कर रहा हूं. जो काम परा-स्नातक अर्थशास्त्र और विधि स्नातक की डिग्रियां नहीं कर पायीं वह लघुकथाएं और कविताएं कर जाती हैं.

वस्तुतः मैं जब किसी प्लॉट या थीम पर कोई लंबी कविता लिख रहा होता हूं तो मेरे मन में कुछ नहीं होता, चित्र अपने आप सामने उतरते आते हैं, परिवेश शब्द देता जाता है, संवेदना सृजन करती है, और जब कोई सहृदय पाठक मेरे किसी पात्र की ओर ध्यान दिलाता है तो वह परिवेश जीवंत हो उठता है और मैं नयी सृजन ऊर्जा से मालामाल, कोई एक और नयी रचना...

साहित्यिक सृजन मेरे लिए बड़ी राहत लेकर आया. तमाम दंश पले थे, टीसती गांठें थीं मन में, रिश्तों से विरक्ति... (चिढ़ थी) सब ठूसा-ठुस्स भरे... लेखन का सहारा न मिला होता तो शायद विक्षिप्त हो गया होता मैं, सब इसी माध्यम से विगलित होने लगे... मैंने धारा के विपरीत हिम्मत की. हिम्मत कि ज़िंदा पात्रों को केंद्र में रखकर कहानियां लिखीं. स्वाभाविक रहा कि कइयों ने अपने विन्यास को सराहा तो कई टेढ़े भी हुए... अब इसमें मैं क्या कर सकता हूं... असत्यापित थे पर रहे सब सत्य... आज भी काने को काना कहने में कोई हिचक नहीं यदि वह मेरे लेखन की जद में आने लायक पक कर कोई पात्र तैयार हो गया.

स्कूल के दिनों के कुछ अध्यापकों के बारे में कितना ही लिखूं उनकी सदय चिंता से उऋण न हो पाऊंगा. कहां से फ़ीस जमा होती, कहां से कॉपी-क़िताबें आतीं, बीमार हो जाता तो कहां से दवा-डॉक्टर आते सब ऊपर वाला जाने या फिर उसके प्रतिनिधि बन कर आये मेरे स्कूल के कुछ अध्यापक.

साहित्य में 'निमित्त' का संपादन, कविताएं, कहानियां, समीक्षा... मेरी छोटी-सी पहचान बनायी तो इनने ही लोगों के बीच संवेदनाएं साझा करने के लिए मंच भी दिया. गाहे-बगाहे विद्वानों के साथ मुझे भी बैठाने लगे कुछ सुधी मित्र. ठीक है कि कुछ 'अजीज' ही नाक-भौं सिकोड़ने वाले सभी जगह पाये जाते हैं. पर यह तो दुनिया की रीति है, क्या किया जा सकता है! हमारा तो ये कि 'हम न ऐसे थे न वैसे थे फिर भी कैसे हो गये. बात अपनी करते रहे और सब के अपने जैसे हो गये.' और ये लोग जो 'न ऐसे थे न वैसे थे फिर भी कैसे हो गये. पाठ ग़ैरत का पढ़ाते रहे हमको और मौक़ा पड़ा तो बेहिसाब बेग़ैरत हो गये.'

इधर कुछ दिनों से कोई बड़ी रचना नहीं लिख पा रहा. या तो थक गया हूं या अनुभव चुक गये हैं, या संवेदनाएं ही भोथरी हो गयी हैं, ठहराव आने लगा. ईश्वर की कृपा ही कहूंगा कि एक साहित्यकार कोश सामने पड़ा, देखा तो कानपुर से, जहां सैकड़ों अच्छे लेखक-कवि हैं' कुल चार-पांच लोग... पता चला जिनने चंदा दिया था. बात चुभी और एक कचोट हुई.. कि जो चंदा न दे पाये वो...और उनका इतिहास क्या होगा. एक और संयोग कि इसी बीच कभी दिवंगत हिंदी सेवियों के कोष की भूमिका पढ़ रहा था, जहां संकलनकर्ता की पीड़ा ने मुझे भी झकझोर दिया कि देह किसी ने छोड़ी और अख़बार, पत्रिका में विवरण किसी और

का छपा! और तैयार हो गयी एक महाकोष की भूमिका... प्रणाम करता हूं उस व्रती को... मेरा संकल्प भी यही बन पड़ा कि एक कोष 'साहित्य और साहित्यकार' तैयार करूं जिसमें बिना किसी अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े, जीवित-दिवंगत के भेद के यथासंभव वे सब सृजनधर्मी शामिल हों जिनकी कम से कम एक पुस्तक अवश्य छपकर आ गयी हो...और काम चल रहा है, अकल्पनीय सहयोग मिल रहा है हर कहीं, हर किसी से... देखता हूं कब तक पूरा कर पाऊंगा. कई मित्र इस काम में लगे हैं. मेरे परिवार के सदस्य पूरी शिद्दत से लगे हैं और साहित्य जगत का सहयोग है, नहीं है कह नहीं सकता... जिस दिन पूरा हो गया उस दिन इस ख़ुशी को कैसे संभाल पाऊंगा.

असह्य और अझेल दुःख के दिन बीते, तो सुख भरे भी आये, ख़राब लोग भी अच्छे लगने लगे, जो अच्छे थे वे और अच्छे लगने लगे. यह सब अनिर्वचनीय सुख देता रहा पर ख़ुशियों के मौक़े अपेक्षाकृत कम ही मेरे हिस्से में आ पाये... कारण क्या गिनाना लोग चटकारे लेकर पढ़ेंगे तो क्या हो जायेगा. नहीं जानेंगे तो क्या पहाड़ टूटा पड़ रहा हैं. हां कुछ तो ज़रूर ऐसे मिले जो अद्भुत-अविश्वसनीय कौंध लेकर आये. क्या चमक थी बूढ़ी आंखों में उस दिन! कोई बैसाखी के सहारे आया तो कोई अपने परिवारीजनों के कंधे पर हाथ रख कर... अविभूत करने वाला दृश्य था... एक ओर उपमेय, एक ओर उपमान... सत्तर वर्ष से नीचे के रचनाकार, सत्तर वर्ष के ऊपर के रचनाकारों का सम्मान कर रहे थे...सम्मान मेला... यह मेरे बहाने से आयोजित श्रृद्धा यज्ञ रहा. ईश्वर ने उस दिन ख़ुशियां इतनी दीं कि बावरा–सा मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि कहां समेट कर रखूं.

सपना देखता हूं कि शायद फिर कभी ईश्वर की कृपा हो. संक्षेप में यही मेरे हमसफ़र दुख-सुख की छोटी–सी यात्रा का मोटा-मोटा ख़ाका, विस्तार करने की कोशिश है आत्मकथात्मक उपन्यास 'मेरे असत्यापित सत्य' पर काम कर रहा हूं... आयेगा तो बहुत कुछ कई कोणों से खुलेगा. फिर भी कुछ न कुछ तो अनकहा रह ही जायेगा. कोई समानधर्मा आगे बढायेगा ही, नहीं तो सृजन रुक जायेगा. सृजन रुकना माने कि ईश्वरीय विधान में हस्तक्षेप. जो न हो सकता है और ना ही होना चाहिए. इसका न अथश्री न इतिश्री... दर्द और दर्प ही सृजन और ध्वंस का बीजांकुरण...

१४१५, 'पूर्णिमा',
रतनलाल नगर,
कानपुर- २०८०२२ (उ. प्र.)
मो. ९४१५५१७४६९/७३७६१३९६४१.
E.mail:shyamsunder1415@gmail.com

कविता

कुछ शब्द अनकहे

अनुभव शर्मा

भीगी सी अलसायी हुई सुबह का आगाज़ हो तुम
कुछ शब्द मेरे जो अनकहे, उनकी मीठी आवाज़ हो तुम,

गीत तुम, कविता भी तुम, हर संगीत का इक साज़ हो तुम
हर इक पल की गिनती हो, हर दिन निखरता आभास हो तुम,

होठों की लाली, आंखों का काजल, पायल की झंकार हो तुम
एक मीठा-सा एहसास हो, धड़कन की हर एक ताल हो तुम,

माथे की बिंदी, नथनी की आभा, कंगन की टंकार भी तुम
पलकों की आतुरता, हाथों की नज़ाकत, हर रंग में बहता आज हो तुम,

आंखों की रौशनी, सपनों के रंगों में, हर बात की मिठास हो तुम
पूजा में हो, मेरी आराधना में, मेरे मंत्रों का हर जाप हो तुम,

ख़ुशबू हो तुम, महक में तुम, फूलों के हर हार में तुम
होली के रंग, दिवाली के दीपक, त्यौहारों का उल्लास हो तुम,

बल खाती नदियां, इठलाता सागर, लहरों का उछाल हो तुम
मेरी सोच में, लिखाई में, मेरे बस्ते की हर किताब में तुम,

पहले प्यार का अनुभव, बचपन का मेरा साथ हो तुम
रानी भी हो, स्नेह भी तुम, 'खुद ही सुनहरा नाम हो तुम',

४०२-श्रीरामनिवास, टट्टा निवासी हॉउसिंग सोसायटी,
पेस्तम सागर रोड नं. ३, चेंबूर, मुंबई ४०००८९.
मो. - ९९२०२०४०४८

लिखने, पढ़ने और वक़्त के संस्कार बचपन से मिले हैं – डॉ. जवाहर कर्नावट

✍ डॉ. अनंत श्रीमाली

(राजभाषा संवर्ग में पदोन्नति में महाप्रबंधक के पद पर पहुंचने वाले बैंकिग उद्योग के प्रथम व्यक्ति : डॉ. जवाहर कर्नावट)

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. जवाहर कर्नावट को लिखने-पढ़ने और वक्तृत्व के संस्कार अपने स्वतंत्रता सेनानी पिता से विरासत में मिले. इसके लिए वे लगातार संघर्ष करते रहे, अपनी धार को मांजते रहे. संघर्षो ने उन्हें लगातार रचनात्मकता के लिए प्रेरित किया बल्कि उनका संपूर्ण जीवन प्रेरणादायी है. १२ अगस्त, १९५९ को एतिहासिक, धार्मिक नगरी उज्जयिनी में जन्मे, एम. ए. (हिंदी), एम. कॉम., पत्रकारिता एवं अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, पीएच. डी. (हिंदी पत्रकारिता), डिप्लोमा इन कंप्यूटराइज्ड बैंकिंग तक की शिक्षा प्राप्त डॉ. कर्नावट ने अपने लेखन की शुरूआत मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय अख़बार 'नई दुनिया' में पत्र, संपादक के नाम से शुरू की और अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज तक अपनी लेखनी के जलवे बिखेरे.

अपने कैरियर की यात्रा उन्होंने इस बैंक के प्रधान कार्यालय में राजभाषा अधिकारी से शुरू की परंतु वे सिर्फ़ राजभाषा अधिकारी तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि वे अध्यापन और शैक्षणिक कार्यों से भी दिलोजान से जुड़े हुए हैं. 'माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय', भोपाल में दो वर्ष तक 'वित्तीय लेखन एवं विश्लेषण' विषय पर अतिथि व्याख्याता रहे, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त वि. वि. के जयपुर अध्ययन केंद्र में स्नातकोत्तर अनुवाद पाठ्यक्रम हेतु तीन वर्षों तक अध्यापन एवं मूल्यांकन कार्य से भी सक्रियता से संलग्न रहे. इसके अलावा सेंटर फ़ॉर इकॉनॉमिक्स एंड डेवलपमेंट कंसल्टेंट सोसायटी, जयपुर के स्वीराज केंद्र द्वारा संचालित स्नातकोत्तर पत्रकारिता डिप्लोमा पाठ्यक्रम में अध्यापन एवं शैक्षणिक कार्य में भी अभूतपूर्व सहयोग दिया.

हिंदी, अंग्रेज़ी, गुजराती भाषा पर प्रभुत्व रखने वाले डॉ. कर्नावट की विशेष उपलब्धि यह है कि उनकी सक्रियता सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ाने एवं लोकप्रिय बनाने में भी रही है. इसके लिए अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन तथा सभा-सम्मेलनों में व्याख्यान व प्रदर्शन किया है. अपने ३३ वर्षों के गौरवशाली सेवाकाल में उन्होंने अपनी प्रतिभा को हिंदी सेवा के लिए समर्पित करते हुए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग पहचान बनायी. वर्ष १९९९ में लंदन में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में जवाहर जी की पेपर प्रस्तुति 'मीडिया और हिंदी' ख़ूब चर्चित रही. इसके बाद तो जैसे उनकी प्रतिभा को अंतर्राष्ट्रीय पंख लग गये. अपनी अद्भुत प्रतिभा के बलबूते डॉ. कर्नावट ने हिंदी कार्यान्वयन और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से न केवल हिंदी बल्कि भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाने में अभूतपूर्व काम किये. इसके चलते उन्होंने एशिया, अफ्रीका, यूरोप, उत्तरी अमेरिका और आस्ट्रेलिया महाद्वीप के २२ से अधिक देशों में आयोजित महत्वपूर्ण सम्मेलनों व कार्यक्रमों में सहभागिता की. वे देश-विदेश के सैकड़ों आयोजनों में अपने व्याख्यान और प्रस्तुति से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर चुके हैं.

इस महायात्रा के दौरान वर्ष २००० से डॉ. कर्नावट ने लंदन से प्रकाशित 'पुरवाई' पत्रिका से प्रेरणा लेकर 'विदेश में हिंदी पत्रकारिता का विस्तार' शीर्षक से पुस्तक लेखन का कार्य आरंभ किया. डॉ. जवाहर ने अपनी विदेश यात्राओं में हिंदी पत्रकारिता के इतिहास को खंगालने का कार्य चुपचाप जारी रखा. वैसे भी वे चुपचाप काम करने में विश्वास रखते हैं लेकिन बाद में धमाका करना उनका शगल रहा है. वर्ष २००७ में न्यूयॉर्क में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में संस्कृति मंत्रालय ने अपनी प्रदर्शनी में डॉ. कर्नावट के विदेश से प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के संकलन को विशेष रूप से शामिल किया. यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है जो संभवत: पहली बार हुआ. अपने इस शोध सफर के लिए वे ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन के अलावा दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, फिजी, आस्ट्रेलिया आदि देशों के राष्ट्रीय अभिलेखागारों से पिछले १०० वर्षों में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के संकलन कार्य को अंजाम देते रहे. यहां यह

डॉ. जवाहर कर्नावट

डॉ. अनंत श्रीमाली

बताना समीचीन होगा कि पिछले ११५ वर्षों में २५ से अधिक देशों से प्रकाशित १०० से अधिक पत्र-पत्रिकाओं का संकलन कर पुस्तक लेखन के काम में वे जुटे हैं जो उनके जीवन का बहुत बड़ा सपना है. इस महत्वपूर्ण काम को देखते हुए मॉरीशस में पिछले वर्ष संपन्न ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन से भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने डॉ. कर्नावट को विशेष रूप से आमंत्रित कर पत्र-पत्रिकाओं के इस नायाब संग्रह को प्रदर्शित करवाया, जिसे अद्भुत प्रतिसाद मिला, मॉरीशस में इसका प्रत्यक्षदर्शी मैं स्वयं भी रहा.

यदि हम उनके लेखन और संपादन की चर्चा करें तो उनके खाते में अनेक पुस्तकें हैं जिसमें उल्लेखनीय है — 'आधुनिक भारतीय बैंकिंग : सिद्धांत एवं व्यवहार' जिसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत किया गया, 'जीवन जीने की कला' (अंग्रेज़ी से अनुवाद एवं संपादित), खुदरा ऋण, ग्रामीण विपणन तथा बैंकिंग व्यवसाय, विमुद्रीकरण एवं डिज़िटल भारत, बैंकिंग में डिज़िटल परिवर्तन – दशा एवं दिशा (ई-पुस्तक : संपादन) आदि प्रमुख हैं. महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय बड़ौदा में 'स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिंदी दैनिक समाचार पत्र : एक अनुशीलन' विषय पर प्रस्तुत शोध ग्रंथ पर पीएच. डी. की उपाधि भी इसी श्रृंखला की उनकी उपलब्धि है.

डॉ. कर्नावट ने इस बात को सिद्ध किया है कि हिंदी के ज़रिये कई उपलब्धियां और ऊंचाइयां प्राप्त की जा सकती हैं. कई पुरस्कारों के हकदार बन सकते हैं. उन्हें म. प्र. राष्टभाषा प्रचार समिति द्वारा हिंदी सेवी सम्मान, म. प्र. अभिनव कला परिषद द्वारा 'शब्द शिल्पी के सम्मान' से सम्मानित किया जा चुका है. विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय वाचन प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार, राष्ट्रभाषा विकास संगठन, गाज़ियाबाद द्वारा 'निराला सम्मान', 'यूएसए हिंदी' संस्था द्वारा न्यूजर्सी में सम्मान, दुष्यंत कुमार पांडुलिपि संग्रहालय, भोपाल द्वारा अखिलेश जैन सम्मान, वैश्विक हिंदी सम्मेलन, मुंबई द्वारा वैश्विक हिंदी सम्मान, प्रेमचंद सम्मान, राजभाषा के श्रेष्ठ कार्यान्वन एवं पत्रिकाओं के संपादन हेतु तत्कालीन उप प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी, उ. प्र. के राज्यपाल श्री विष्णुकांत शास्त्री, म. प्र. के तत्कालीन राज्यपाल मो. शफ़ी कुरैशी, डॉ. भाई महावीर एवं अनेक वरिष्ठ साहित्याकारों द्वारा कई पुरस्कार एवं सम्मान उनकी झोली में हैं.

चूंकि वे मीडिया से जुड़े व्यक्तित्व हैं, बल्कि ये उनका शौक़ है लिहाजा दूरदर्शन के जयपुर, भोपाल, अहमदाबाद, लखनऊ एवं मुंबई केंद्रों के अलावा डीडी न्यज़, लोकसभा टीवी, एशिया टीवी (न्यूयॉर्क), मारीशस टीवी से भी उनके कार्यक्रम, साक्षात्कार प्रसारित हुए हैं. भोपाल दूरदर्शन द्वारा निर्मित कार्यक्रम 'राजभाषा संसद : एक परिकल्पना' में भी उनकी प्रमुख भूमिका रही है.

डॉ. कर्नावट यूके, बेल्जियम, हॉलैंड, ज़र्मनी, स्विटज़रलैंड, रूस, इटली, आस्ट्रिया, अमेरिका, फ्रांस, थाइलैंड, हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, फीजी, ऑस्ट्रेलिया, वियतनाम, कंबोडिया, न्यूज़ीलैंड आदि देशों की शैक्षणिक यात्रा कर चुके हैं. इस नाते उन्होंने कई देशों में भारत का प्रतिनिधित्व भी किया है जिनमें उल्लेखनीय है — अंतराष्ट्रीय सहयोग परिषद के सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल में मॉरीशस की यात्रा व फिजी में रामायण केंद्र द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में व्याख्यान, विश्व हिंदी सम्मेलन लंदन, न्यूयॉर्क, जोहानसबर्ग में आलेख प्रस्तुति, बैंकॉक (थाइलैंड), डर्बन (दक्षिण अफ्रीका) के सम्मेलनों में भागीदारी, भारतीय भाषाओं पर मास्को वि. वि. द्वारा आयोजित 'वेब मीडिया में भारतीय साहित्य' विषय पर पेपर प्रस्तुति और फिजी में अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन एवं सॉउथ पैसिफ़िक यूनिवर्सिटी, फीजी में व्याख्यान जैसी

महत्वपूर्ण उपलब्धियां उनके खाते में दर्ज़ हैं. इसके साथ ही अपने नवोन्मेषी कार्यों से राजभाषा संवर्ग में निरंतर पद्दोन्नति प्राप्त करने वाले डॉ. जवाहर कर्नावट महाप्रबंधक के पद पर पहुंचने वाले बैंकिंग उद्योग के प्रथम व्यक्ति बन चुके हैं.

बातचीत के दौरान वे बताते हैं कि वे अंग्रेज़ी के विरुद्ध नहीं हैं, हिंदी समर्थक होने का मतलब अंग्रेज़ी का विरोधी होना कतई नहीं है उनका मानना है कि हरेक कार्य जो हिंदी अथवा अपनी मातृभाषा में करना सहज रूप से संभव हो, हिंदी में ही किया जाना चाहिए. इसके विपरीत आज हर छोटे-छोटे कार्यों में भी निर्भरता अंग्रेज़ी पर हो गयी है. इतनी उपलब्धियां, काम सब कैसे कर लेते हैं? इसके उत्तर में वे कहते हैं कि समय प्रबंधन को इसका श्रेय देता हूं. मैं कभी-कभी एक-एक माह तक टीवी नहीं देखता. आजकल महत्वपूर्ण ख़बरें मोबाइल पर हैं, मेरे लिए मेरा काम पूजा है. किस काम को कितना समय देना है, उसे युक्तिसंगत ढंग से निर्धारित करता हूं और उसी हिसाब से मैं काम करता हूं. इसे मैं स्मार्ट वर्किंग का नाम देता हूं. भारत में हिंदी रोज़ी–रोटी की भाषा बन सकती है, इस प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं कि बन सकती है बशर्ते कि राजनीतिक स्तर पर सुदृढ़ निर्णय लिया जायें. हिंदी भाषी राज्यों की जनसंख्या ५० करोड़ से अधिक है जिन्होंने हिंदी को स्थापित कर दिया है. हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी में शिक्षा, रोज़गार दें तो अपने आप हिंदी आजीविका का साधन बन सकती है. अंग्रेज़ी को पढ़ाया जाये पर शिक्षा का माध्यम हमारी भारतीय भाषाएं ही हों. इससे हिंदी और रोज़गार के साधन, दोनों बढ़ेंगे.

विदेश और भारत में हिंदी की प्रगति की तुलना के प्रश्न में वे कहते हैं कि विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ गया है. हिंदी भारत में बोलने में तो अत्याधिक प्रयोग में लायी जा रही है पंरतु लिखने में उसका प्रयोग कम होता जा रहा है विशेषकर नयी पीढ़ी को हम यह विश्वास नहीं दिला पा रहे हैं कि हिंदी में भी उनका भविष्य सुरक्षित है. मुद्दा यह है कि यदि हिंदी भाषी व्यक्ति भी हिंदी में काम को बढ़ाएं तो हिंदी अपने आप बढ़ेगी.

भारत में हिंदी तकनीकी, प्रौद्योगिकी की सुविधाओं के मुद्दे पर वे बताते हैं कि भारत में भाषाई तकनीकी सुविधाएं बहुत हैं और निरंतर आ रही है पर उनका उपयोग बहुत कम हो रहा है. इन सुविधाओं का प्रचार-प्रसार ही नहीं हुआ है. अब हिंदी में पॉवर पाइंट, मेल मर्ज, एक्सल और यूनिकोड के ज़रिये अंतराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के अलावा भारतीय भाषाओं में काम कर सकते हैं परंतु दुर्भाग्य यह है कि इसके बारे में आम आदमी को जानकारी नहीं है. दूरदर्शन और सोशल मीडिया के माध्यम से इनकी सुविधाओं का जोर-शोर से प्रचार किया जाना चाहिए ताकि आम आदमी की मानसिकता बदले और इन साधनों का अधिकाधिक उपयोग हो.

सरकारी संगठनों, बैंकों में हिंदी की स्थिति के बारे में वे कहते हैं कि बैकों में स्थिति बेहतर हुई है. आंतरिक कार्यों में हिंदी बढ़ी है परंतु ग्राहक और लाभप्रदता को देखा जाये तो यह एक चुनौती है. बैकों में ग्राहकों को हिंदी में, भारतीय भाषाओं में सेवाएं देने का काम गतिशील है और इस दिशा में बहुत कुछ होना बाकी है. पासबुक द्विभाषी देने में तकनीकी समस्याएं हैं. लेनदेन में भारतीय भाषाओं के प्रयोग में भी काम होना शेष है. बहुत जल्दी यह भी हो जायेगा. हिंदी की स्थिति कमतर नहीं है. भारत की जनसंख्या बढ़ रही है, उसी अनुपात में हिंदी जानने वालों की संख्या भी बढ़ रही है. मुद्दा यह है कि हिंदी जानने वालों को प्रोत्साहन देना आवश्यक है.

नयी पीढ़ी का लगाव हिंदी से उतना नहीं है जितना पुरानी पीढ़ी का था, इसके उत्तर में डॉ. कर्नावट कहते हैं कि हमने विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम उलटा कर दिया है. भारतीय भाषाओं के स्कूल बंद हो रहे हैं. बदले हुए वातावरण में हिंदी की भावना, प्रेम युवाओं में जागृत करना होगा. विशेषकर शिक्षा को रोज़गार से जोड़ना होगा तभी युवा पीढ़ी हिंदी से जुड़ेगी. कुल-मिलाकर डॉ. कर्नावट राजभाषा की ध्वज पताका लिये दिग्विजय यात्रा पर निकले हैं, उनकी यह ऊर्जा, उसकी सुगंध हमेशा चहुं ओर फैलती रहे.

बड़ौदा सन टॉवर
सी-३४, जी-ब्लॉक, बांद्रा-कुर्ला कॉम्पलेक्स,
बांद्रा (पूर्व), मुंबई-४०००५१.
मो. : ७५०६३७८५२५

डॉ. अनंत श्रीमाली
हम लोग, बि. नं. ७५, ए-विंग-१०२,
तिलक नगर, चेंबूर, मुंबई-४०००८९
मो. :९८१९०५१३१०

'सर्वप्रथम' होने का 'दंड' और 'पुरस्कार' पानेवाली डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी

✍ डॉ. राजम पिल्लै

'सर्वप्रथम' होना या होने की कोशिश करना हमेशा ही सराहना का विषय नहीं होता. कई बार वह 'स्पर्धा' या 'ईर्ष्या का विषय होता है तो कई बार तो इतना नियम-बाध्य तक माना जाता है कि 'सर्वप्रथम' के स्थान पर अयाचित रूप से खड़ा व्यक्ति अपने को बिरादरी से बाहर निकाला हुआ तक मानने लगता है और अगर उसका मनोबल ज़रा भी कम हुआ या उसे संबल और समर्थन देनेवाले ज़रा भी पीछे हट गये तो वह हतोत्साहित हो टूट भी जाता है लेकिन, अगर वह व्यक्ति पूरे मनोबल के साथ, अपनी नियत आकांक्षाओं, उद्देश्यों की ओर कर्मठता के साथ अग्रसर होता रहता है तो वह एक 'इतिहास' ही रच देता है और दूसरों के लिए भी एक प्रतिमान बन जाता है.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी ऐसी ही एक कर्मठ, जीवंत, प्रतिमान थीं जिन्होंने अपने युवा काल में और आगामी वर्षों में धैर्य, साहस, सामाजिक प्रतिबद्धता के ऐसे-ऐसे मील स्तंभ स्थापित किये कि बिना कहे ही लोग कह उठते थे कि मुत्तुलक्ष्मी गयी है न उस क्षेत्र में तो निश्चित ही वह 'सर्वप्रथम महिला' ही होगी उस क्षेत्र की. मुत्तुलक्ष्मी का घर-परिवार-जीवन लगभग सामान्य ही सा था पर उसमें कुछ-कुछ तत्व असाधारण, असामान्य थे जिन्होंने मुत्तुलक्ष्मी के व्यक्तित्व को गढ़ा-रचा.

परिवार और परवरिश :

मुत्तुलक्ष्मी का जन्म ३० जुलाई १८८६ को, ब्रिटिश भारत की मद्रास प्रेसिडेंसी के पुदुकोट्टै नामक रियासत में हुआ. उनके पिता एस. नारायणस्वामी अय्यर महाराजा कॉलेज़ के प्रिंसिपल थे. रुढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के बावजूद नारायणस्वामी अय्यर के विचार और कार्य न केवल उदार, प्रगतिवादी बल्कि उस समय को देखते हुए क्रांतिकारी थे. उन्होंने चंद्राम्माल से विवाह किया जो एक 'देवदासी' परिवार से थीं. समाज ने बहुत विरोध किया, यहां तक कि परिवारवालों ने उन्हें बहिष्कृत भी कर दिया लेकिन नारायणस्वामी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे. इन परिस्थितियों की वजह से मुत्तुलक्ष्मी का संबंध अपने ननिहाल से अधिक रहा. उन्होंने बचपन ही से 'देवदासी' स्त्री और उसके परिवार की जो सामाजिक स्थिति थी उसे देखा था और उनकी सोचनीय त्रासदी की जो गहरी छाप उनके मन पर पड़ती गयी उसी का परिणाम था कि आगे चलकर 'देवदासी प्रथा उन्मूलन क़ानून' को बनाने और कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने अनवरत, अथक प्रयास किये. यद्यपि यह क़ानून उसी काल-खंड में पारित नहीं हो पाया लेकिन उसके प्रति लोगों में चेतना जगाने के कठिन, दुस्तर कार्य को वे करती रहीं और लोगों की मानसिकता और सोच को प्रभावित करने में वे सफल रहीं.

पिता नारायणस्वामी ने तत्कालीन सामाजिक परंपरा को तोड़ते हुए बेटी को पढ़ने-लिखने के लिए स्कूल भेजा. रजस्वला होते ही मुत्तुलक्ष्मी के घर से बाहर जाकर पढ़ने-लिखने पर पाबंदी लग गयी लेकिन घर पर पढ़ाई जारी रही. मां चाहती थी कि बेटी का विवाह कर दिया जाये लेकिन बेटी तो एक अलग-अनूठे स्वप्न को पाल रही थी और फिर वह यह भी मानने को तैयार नहीं थी कि केवल लड़कों के लिए ही पढ़ाई-लिखाई ज़रूरी है, लड़कियों के लिए नहीं.

कॉलेज़ में प्रवेश, पर आसानी से नहीं!

मुत्तुलक्ष्मी के जीवन में अब जैसे एक नियत नियम ही बन गया कि उसे कोई भी फल आसानी से सहज ही नहीं मिल पायेगा. हर क़दम पर विवाद, प्रतिरोध, संघर्ष. मैट्रिक

की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद उसने महाराजा कॉलेज़ में प्रवेश के लिए आवेदन किया. कॉलेज़ के तत्कालीन प्रिंसिपल और अन्य छात्रों के अभिभावकों ने लगभग मौन विरोध किया. वे नहीं चाहते थे कि एक तो लड़की और उस पर से जिसकी मां देवदासी परिवार की हो उनके विद्यालय को दूषित करे. उन्हें लगता था कि एक लड़की की उपस्थिति से छात्र लड़कों पर 'अनैतिक' प्रभाव पड़ेगा.

लेकिन सौभाग्य की बात यह रही कि पुदुकोट्टै रिसायत के महाराजा ज़्यादा उदारवादी थे. उन्होंने लोगों के आक्षेपों पर ध्यान नहीं दिया और मुत्तुलक्ष्मी को न केवल कॉलेज़ में प्रवेश दिलवाया अपितु स्कॉलरशिप भी दिया. आगे चलकर पिता जहां यह चाहते थे कि मुत्तुलक्ष्मी पढ़-लिखकर स्कूल टीचर बने वहीं मुत्तुलक्ष्मी ने मद्रास मेडिकल कॉलेज़ में प्रवेश लिया, सन १९१२ में पढ़ाई पूरी की और चेन्नै के गवर्नमेंट हॉस्पिटल फॉर विमन एंड चिल्ड्रन में हाउस सर्ज़न बनी.

डॉ. राजम पिल्लै

विवाह एक अनुबंध :

मुत्तुलक्ष्मी ने अपने जातीय दायरे से बाहर जाकर भी सुंदर रेड्डी से विवाह किया और दोनों के बीच यह अनुबंध रहा कि पति, पत्नी की एक समकक्षी व्यक्ति की तरह सम्मान करेंगे और (केवल परंपरा की वजह से) उसकी आकांक्षाओं के आड़े नहीं आयेंगे.

सन १९१४ में २८ वर्ष की उम्र में मुत्तुलक्ष्मी ने नेटिव मैरेज़ एक्ट १८७२ के अंतर्गत सुंदर रेड्डी से विवाह किया. मुत्तुलक्ष्मी ने जैसे देखते-देखते कितनी सारी परंपराओं को चुनौती दिये बग़ैर ही तोड़ दिया.

मुत्तुलक्ष्मी की सामाजिक गतिविधियां :

मुत्तुलक्ष्मी एक ऐसे युग के जैसे ऐन मध्य में खड़ी थी जब समग्र भारत हर क्षेत्र में जैसे एक नयी लहर का सामना कर रहा था. कुछ लोग उस लहर से डर भी रहे थे, उससे आशंकित भी थे तो कुछ उसके स्वागत के लिए स्वयं आगे बढ़ने लगे थे.

राष्ट्रीय आंदोलन, बहुमुखी रूप से देश में उभर रहा था. इतना सारा बदलाव इस पुरातन देश ने एक साथ कभी नहीं देखा था. पूरे देश का राजनीतिक, सामाजिक मानचित्र ही जैसे नये ढंग से अंकित किया जा रहा था. ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल जैसे देशों से व्यापारी-संस्थान बहुत पहले से दक्षिण के पश्चिमी-पूर्वी किनारों पर पहुंचकर वहां अपनी-अपनी बस्तियां बसा चुके थे; वहां के राजनीतिक समीकरणों में ऐतिहासिक बदलाव ला चुके थे. मद्रास, कलकत्ता और बंबई इन तीन बंदरगाही-नगरों को ब्रिटिश ईस्ट इंडिया ने बसाया और उद्योग धंधे ही नहीं शिक्षा, क़ानून, रहन-सहन और सोच को बड़ी तेज़ी से बदलना शुरू किया.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी चेन्नै, मद्रास में अपनी मेडिकल प्रेक्टिस तो कर ही रही थीं लेकिन स्वाभाविक ही उन जैसा संवेदनशील, विचारशील, कर्मठ व्यक्ति केवल तटस्थ रहकर मूकदर्शक नहीं बना रह सकता था. कॉलेज़ में पढ़ाई के दिनों से ही मुत्तुलक्ष्मी की भेंट बहुमुखी प्रतिभा की धनी सरोजिनी नायडू (१८७९-१९४९) से हुई थी और फिर उन्होंने स्त्रियों के प्रश्नों पर चर्चा करने वाली सभाओं, बैठकों में जाना शुरू किया.

मुत्तुलक्ष्मी पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा डॉ. एनी बेसंट (१८४७-१९३३) का जो मूलत: आयरलैंड की थीं, प्रखर वक्ता और तेज़ लेखनी की धनी थीं और जनांदोलनों से सीधे जुड़ी थीं. एनी बेसंट थियोसॉफ़िकल सोसाइटी के प्रमुख स्तंभों में से थीं. मद्रास के अडयार में सोसाइटी (१८७८) का केंद्र था. एनी बेसंट 'होम रूल आंदोलन' की प्रमुख प्रणेताओं में से थी. लोकमान्य तिलक, लाला लजपतराय जैसे अनेक कद्दावर राष्ट्रीय नेताओं का संबंध होमरूल आंदोलन से रहा था. एनी बेसंट ने स्त्री के विकास, शिक्षा के पुनर्गठन, युवाओं की सहभागिता के लिए व्यापक कार्य किया, अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित कीं, देशभर में, विदेश में भी व्याख्यान दिये. महिलाओं के संगठनों की स्थापना को प्रोत्साहित किया. मुत्तुलक्ष्मी ने विशेष रूप से स्त्रियों तथा बच्चों के स्वास्थ्य तथा विकास के क्षेत्र को चुना. उन्होंने विमन्स इंडियन एसोसिएशन की गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया.

प्रथम लेज़िस्लेचर :

सन १९२६ को मुत्तुलक्ष्मी लेज़िस्लेटिव कौंसिल की सदस्य मनोनीत की गयीं, ऐसे किसी पद पर नियुक्त की जानेवाली वे प्रथम महिला थीं. फिर वे जब लेज़िस्लेटिव कौंसिल की डिप्टी चेयर पर्सन चुनी गयीं तो वे दुनिया की सर्वप्रथम महिला थीं जो ऐसे किसी पद पर पहुंची.

गांधीजी का प्रभाव :

स्वाभाविक ही था कि सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में इतनी सक्रिय सहभागिता करनेवाली डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के तत्कालीन सर्वप्रमुख नेता गांधीजी के संपर्क में आयें. डॉ. मुत्तुलक्ष्मी का सबसे उल्लेखनीय

कार्य था देवदासी प्रथा के उन्मूलन के लिए क़ानून बनाने के लिए आंदोलन करना. यों इसके विरोध में भी कुछ महत्वपूर्ण आवाज़ें उठी थीं. तमिलनाडु के कांग्रेसी नेता भी सत्यमूर्ति और देवसादी-परिवार से आयीं विश्वविख्यात भरतनाट्यम नृत्यांगना श्रीमती बालसरस्वती उनमें से कतिपय महत्वपूर्ण लोग थे. कुछ लोगों का यह मानना था कि 'देवदासी' वर्ग ने सदियों से क्लासिकल कलाओं का पोषण-संरक्षण किया है, उन्हें मामूली देह-विक्रेता की कोटि में डालना बड़ा अनुचित है. देवदासी प्रथा उन्मूलन के बाद उन सबका क्या होगा, इस पर सोचे बग़ैर या कोई योजना बनाये बग़ैर केवल क़ानून पारित करना अमानवीय होगा. मुत्तुलक्ष्मी का प्रयास नितांत असफल तो नहीं गया, पर उसे क़ानूनी जामा, सन १९४७ में देश को आज़ादी मिलने के बाद ही पहनाया गया.

रोग-चिकित्सा के क्षेत्र में अपूर्व कार्य :

कैंसर जैसे भयावह रोग से संबंधित रिसर्च कार्य के लिए और इलाज़ के लिए संस्था का गठन करना डॉ. मुत्तुलक्ष्मी का स्वप्न था और उन्होंने उसे काफ़ी हद् तक साकार भी किया. उनका कैंसर इंस्टीट्यूट जैसे उनका कालजयी स्मारक है.

अनाथों, लावारिसों, विशेषकर लड़कियों के लिए उन्होंने 'अव्वै इल्लम' की स्थापना की.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी की विरासत :

२२ जुलाई सन १९६८ में ८१ वर्ष की आयु में डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी का देहांत हुआ. सन १९५६ में 'पद्मभूषण' अलंकरण से उन्हें विभूषित किया गया.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी ने स्त्रियों को समाज में पुरुष के समतुल्य सम्मान और अधिकार दिलाने के लिए आजीवन प्रयास किया. उनके अपने जीवन में परंपराओं द्वारा आरोपित प्रतिबंधों की वजह से जो रुकावटें व्यक्ति विकास में आ रही थीं उन्होंने अपनी कड़ी मेहनत, स्वार्थ सेवा और समाज के उदार, प्रगतिकामी व्यक्तियों की सहायता से हटाया और अपना तथा आगामी पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त किया. अपने समकालीन वरिष्ठ संस्कृति कर्मियों के मार्गदर्शन में उन्होंने अपना सामाजिक करियर शुरू किया. सरोजिनी नायडू, डॉ. एनी बेसंट और फिर गांधीजी उनके लिए प्रेरणा-स्रोत रहे. डॉ. मुत्तुलक्ष्मी कभी भी किसी विचार-धारा या 'करिश्माई' व्यक्ति की अंधानुयायी नहीं रहीं. उन्होंने अपने विवेक के तराजू पर नाप तौलकर अपनी संतुलित बुद्धि की कसौटी पर कसकर व्यक्तियों, सिद्धांतों, परिस्थितियों का मूल्यांकन किया, अपना कर्तव्य मार्ग चुना.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी ने वर्ग, जाति, धर्म की विभाजक दीवारों को लांघकर समाज-सेवा का कार्य किया. यों भी चूंकि वे केवल शिक्षा या व्यवसाय से चिकित्सक नहीं थीं इसलिए उन्होंने मुस्लिम लड़कियों-स्त्रियों के लिए, कथित निम्न वर्गीय स्त्रियों के लिए आश्रय-स्थानों का, चिकित्सा-सुविधाओं का, शिक्षा-वितरण का कार्य किया. मुत्तुलक्ष्मी का अव्वै इल्लम् और कैंसर इंस्टीट्यूट उनके अविस्मरणीय कार्यों के स्मारक हैं.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी ने 'माई एक्सपीरिएंस एज़ ए लेज़िस्लेटर' (एक विधायक के तौर पर मेरा अनुभव) शीर्षक से एक पुस्तक लिखी जिसमें मद्रास लेज़िस्लेचर के तौर पर उनके द्वारा किये गये सुधार–कार्यों का विवरण दिया गया है.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी ने अपनी शैक्षणिक सफलताओं, सामाजिक क्षेत्र में उठायी गयीं पहलक़दमियों और घोर निंदा-आलोचना के बीच संतुलित भाव से अनवरत कार्य करते जाने का जो आदर्श प्रस्तुत किया वह उनकी अमूल्य विरासत है. अधिकार पाने के लिए पात्रता तो होनी ही चाहिए लेकिन यदि वह पात्रता किसी सामाजिक पारंपरिक प्रतिबंध की वजह से बाधित होती हो तो उसे हटाने के लिए कई गुना अधिक मनोबल लगाकर प्रयास करना पड़ेगा. प्रतिस्पर्धा में आप भाग लेना चाहें या न चाहें उसमें आपको धकेलकर ही सही सम्मिलित कर ही दिया जायेगा और शर्त यह रहेगी कि आप 'सर्वप्रथम' आयें वरना हमेशा-हमेशा के लिए प्रतियोगिता के लिए अपात्र घोषित कर दिये जाओगे.

और फिर सर्वप्रथम आने के 'दंड' और 'पुरस्कार' भी आजीवन मिलते रहेंगे. एक साथ में गुलदस्ता और दूसरे में पत्थर लेकर दुनिया आपकी एक-एक गतिविधि को जांचेगी-परखेगी. यह एक सनातन 'परंपरा' है.

डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी ने बड़ी गंभीरता से गहन प्रतिबद्धता के साथ अपने जीवन-मिशन को निर्धारित किया, उसे लगातार सबल बनाया. उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से यह संदेश दिया कि केवल 'लैंगिक समानता' पर लच्छेदार भाषण देने से, रंग-बिरंगी इश्तिहारबाजी करने से असली 'समानता' स्थापित नहीं होती, नहीं होगी. सिर्फ़ बोलने से काम नहीं चलता, सिर्फ़ काम ही बोलता है.

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : rajampillai43@gmail.com

घर-घर पढ़ा जाने वाला उपन्यास

✍ सुधा ओम ढींगरा

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (उपन्यास- **पंकज सुबीर**)
प्रकाशन : शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, म. प्र., ४६६००१, **मूल्य :** २०० रुपये

हिंदी में ऐसा अद्भुत उपन्यास बहुत कम पढ़ने को मिलता है. समसामयिक, दुर्लभ, नाज़ुक, गंभीर और चिंतनशील विषय का कुशलता से निर्वाह किया गया है. गज़ब की क़िस्सागोई. जो विषय उपन्यास में उठाया गया है, वह विषय अपने आप में बहुत-सी भ्रांतियां, पूर्वाग्रह, संशय, विरोधाभास और प्रश्न समेटे हुए है. उपन्यास धर्म की भ्रांतियों, पूर्वग्रहों, संशय और विरोधाभासों को स्पष्ट करता हुआ कई प्रश्नों के उत्तर देता है. पांच हज़ार साल के इतिहास को नयी दृष्टि से देखा और परखा गया है.

डैन ब्राउन ने 'डा विन्ची कोड' में बाइबल की थ्योरी और सलमान रश्दी ने 'स्टैनिक वर्सेज़' में कुरआन में तथ्यों के भाव पर रौशनी डाली है. पर पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास जिन्हें 'जुर्म -ए-इश्क़ पे नाज़ था' में सभी धर्मों के मूल तत्व, जिस पर हर धर्म टिका हुआ होता है, की पड़ताल की है. मूल तत्व जिसे हर धर्म में भुला दिया गया है; जिससे हर धर्म का स्वरूप ही भिन्न हो गया है. कागज़ों पर लिखे शब्दों के अर्थों को ही बदल दिया गया है. अफ़सोस की बात है कि भारतीय दर्शन, मीमांसा, जीवन पद्धति तक उसे भुला चुके हैं. पांच हज़ार साल पहले के इतिहास, विभिन्न धर्मों पर किया गया शोध, हिंदू धर्म की, इस्लाम की, यहूदियों की, क्रिश्चियन की, बौद्धों की, पारसियों की और जैन धर्म की तथ्यों से भरपूर ढेरों जानकारियां हैं. इतिहास को खंगालता, शोध परक और बौद्धिक श्रम लिये उपन्यास का एक-एक पृष्ठ भीतर के ज्ञान-चक्षु खोल देता है.

उपन्यास पढ़ते हुए महसूस होता है जैसे किसी मलंग ने या सूफ़ी लेखक ने लिखा है, जिसके लिए सब धर्म एक बराबर हैं. न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर... बस सभी धर्मों का मूल मंत्र, प्रेम, विश्वास और इंसानियत की पैरवी की है. ये हैं तो हिंसा पैदा ही नहीं होती. दुःख की बात तो यही है कि आज धर्मों में यही मूल मंत्र ग़ायब हैं और हिंसा बलवती हो गयी है. उपन्यास में लेखक ने दुनिया के सभी प्रमुख धर्मों पर बात की है, उनके सिद्धांतों पर चर्चा की है. हर धर्म के मूल तक पहुंच कर लेखक ने अपने पाठक के लिए जैसे किसी नयी दुनिया के दरवाज़े खोलने का काम किया है. जैसे-जैसे पाठक इस उपन्यास को पढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके सामने नयी-नयी जानकारियों के दरीचे खुलते जाते हैं. उपन्यास के आरंभ में ही लेखक ने एक लंबी चर्चा के माध्यम से बहुत सारी बातों की व्याख्या की है. इस व्याख्या में उदाहरण लिये हैं, संदर्भ लिये हैं और उनके द्वारा धर्म को फिर से परिभाषित करने का कार्य किया है. यदि आप यह कहेंगे कि यह उपन्यास धर्म को ख़ारिज करता है, तो आप ग़लत होंगे, यह उपन्यास असल में धर्म में आये हुए विचलन को, भटकाव को ख़ारिज करता है.

यह उपन्यास केवल एक उपन्यास नहीं है, यह असल में एक समीक्षा है कि हमारी यह मानव जाति पांच हज़ार साल पहले अपने लिए क्या तय कर के निकली थी और आज पांच हज़ार साल बाद कहां है? यह उपन्यास परत दर परत पांच हज़ार सालों की कहानी को स्पष्ट करता हुआ चलता है और उस कहानी के साथ फिर-फिर लौटता है आज की कहानी पर. भारत-पाक विभाजन पर बहुत-सी रचनाएं सामने आयी हैं, लेकिन यह अपनी तरह का एक अनोखा प्रयास है, जिसमें विभाजन के मूल कारणों तक जाने की कोशिश की गयी है. इतिहास के पात्रों के साथ सवाल-जवाब करते हुए उस विभाजन के सूत्र तलाशने की कोशिश लेखक ने की है. यही कोशिश इस उपन्यास को अपने समय से आगे का उपन्यास और अत्यंत विशिष्ट उपन्यास बना देती है. जो नयी सूचनाएं भारत और पाकिस्तान

के विभाजन को लेकर सामने आती हैं उन्हें पढ़कर पाठक दंग रह जाता है. यह उपन्यास उस धीमी प्रक्रिया का विस्तार से विश्लेषण करता है, जो अलगाववाद के रूप में पैदा हो रही होती है. और जिसकी परिणति अंततः भारत-पाक विभाजन के रूप में सामने आती है. इस पूरी प्रक्रिया की बात करते समय लेखक किसी को क्षमा नहीं करता है. वह इतिहास के हर उस पात्र को कठघरे में खड़ा करता है, जो भारत-पाक विभाजन से जुड़ा हुआ है.

'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' एक रात का उपन्यास है. क़स्बे और उसके पास की बस्ती में किन्हीं कारणों से दो संप्रदायों के मध्य दंगे शुरू हो जाते हैं. दंगों से पैदा हुई दहशत, असुरक्षा और ख़ौफ़ की रात का इतना स्वाभाविक और बख़ूबी से चित्रण किया गया है कि भय का कहर बरपाने वाली रात बेहद वास्तविक लगती है और पाठक स्वयं को दंगे में फंसा हुआ महसूस करता है.

उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर का चरित्र शुरू से लेकर अंत तक बहुत परिपक्व और सुलझा हुआ रहता है. लेखक ने इस पात्र का निर्वाह बेहद कुशलता से किया है, बौद्धिकता से लबालब और संवेदना से भरपूर. धर्म और संप्रदाय, राजनीति में धर्म का प्रवेश, देश का बंटवारा, कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, आर एस एस, सांप्रदायिक दंगे और उनके पीछे की तथ्यपरक कहानियां दंगे के दौरान वह बताता है. रामेश्वर जो कहता है, इस कहन को जिस शैली में बांधा गया है, वह अक्सर उन विदेशी उपन्यासों में देखने को मिलती है, जिनमें इतिहास के तथ्यों की पुष्टि की जाती है.

ज़िला कलेक्टर वरुण कुमार और एडिशनल एस पी भारत यादव दो ऐसे पात्र हैं, जो सरकारी तंत्र और प्रशासन के प्रति विश्वास और आदर पैदा करते हैं. दंगे में वे सिर्फ़ इंसानियत धर्म को निभाते हैं और दंगाइयों को पछाड़ कर पीड़ितों को बचाते हैं. युवा पात्र विकास, खुर्शीद को सही मार्गदर्शन मिलने पर उनका बेहतरीन सामने आता है.

युवा पीढ़ी उचित मार्गदर्शन के अभाव में कन्फ्यूज़्ड है. धार्मिक ग्रंथों की शिक्षाएं, व्याख्या और अर्थ ही धार्मिक नेताओं ने सुविधानुसार बदल दिये हैं; जिससे युवा पीढ़ी भटक गयी है, सही अर्थों में धर्म को, उसकी परिभाषा को समझती ही नहीं. सोशल मीडिया मनघडंत ज्ञान बांट रहा है. ऐसे में 'जुर्म -ए-इश्क़ पे नाज़ था' ताज़ी हवा के झोंके सा महसूस होता है, जो दिल दिमाग़ के सारे जाले साफ़ कर देता है.

मुख्य पात्र रामेश्वर द्वारा विकास को कही गयी कुछ बातें मन-मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ती हैं — 'सुनो बच्चे... नफ़रत करना बहुत आसान है, लेकिन प्रेम करना बहुत मुश्किल है. इसलिए यह दुनिया आसान काम को ही चुनती है. मार देना बहुत आसान है, मगर बचा लेना बहुत कठिन है. इसलिए ज़्यादा लोग पहले वाले आसान काम को ही चुनते हैं. एक बात याद रखना भीड़ जिस भी दिशा में जा रही होती है वह दिशा और वह रास्ता हमेशा ग़लत होता है. भीड़ कभी सही दिशा में नहीं जाती है इसलिए क्योंकि भीड़ स्वयं नहीं चलती उसे चलाया जाता है.'

'पाकिस्तान बन जाने के बाद भी जो मुसलमान यह देश छोड़कर वहां नहीं, गये, वे सब हमारे भरोसे पर यहां रुक गये थे. इस भरोसे पर कि कुछ भी हुआ तो हम उनको बचायेंगे. जिस तरह यह सलीम यहां रुका हुआ है न हमारे भरोसे पर, ठीक उसी तरह अब यह हम सब की ज़िम्मेदारी है कि हम इस भरोसे को बचा कर रखें. हमारे अपने ही कुछ लोग हमें इस भरोसे को तोड़ देने के लिए उकसाते हैं, लेकिन तोड़ने वालों को कभी याद नहीं रखा जाता, जोड़ने वालों को याद रखा जाता है.'

एक जगह रामेश्वर भारत को बताता है 'मुसलमानों ने अपनी कट्टरता नहीं छोड़ी और धीरे-धीरे यह हुआ कि हिंदू, जो दुनिया के दूसरे धर्मों के मुक़ाबले में कम कट्टर धर्म था, वह भी कट्टर होता चला गया. हिंदुओं ने धार्मिक कट्टरता का पाठ मुसलमानों से ही सीखा है. आज तो स्थिति यह है कि आज का हिंदू तो मुसलमानों की तुलना में और अधिक कट्टर हो गया है. और अब यह कट्टरता ही मुसलमानों को परेशान कर रही है.'

'भारत में इस्लाम कैसा होना चाहिए! यह बात केवल सूफ़ी संतों ने समझी, लेकिन उन सूफ़ी संतों का संदेश ही मुसलमान नहीं समझ पाये. मुसलमानों ने अपना आदर्श सूफ़ी संतों को न बनाकर आक्रमणकारी योद्धाओं को बनाया.'

उपन्यास पढ़ते हुए ऐसी बहुत सी बातें हैं जो जिज्ञासा बढ़ाती हैं. उत्सुकता जागती हैं, कभी मन विचलित होता है, कभी शांत तो कभी उद्वेलित.

रामेश्वर के साथ एक और पात्र है, शाहनवाज़. रामेश्वर उन्हें अपने बेटा मानते हैं और उसी के इर्द-गिर्द सारा

उपन्यास घूमता है. बहुत कुछ आपको बता दिया, अब आप उपन्यास पढ़ कर पूरी कहानी जानें. इतना कहूंगी कि उपन्यास बेहद पठनीय है और यह उपन्यास घर-घर पढ़ा जाना चाहिए. लेखक ने शिल्प में कई नये प्रयोग किये हैं, जो उपन्यास को रोचक बनाते हैं.

उपन्यास का अंत बहुत प्रभावशाली है, बेहद सकारात्मक. दंगे के बाद जिस भारत का जन्म होता है, उसे हिंदू और मुसलमान दोनों थामते हैं.

डॉक्टर जोसफ़ मक़ी की पुस्तक 'दा पॉवर ऑफ़ यौर सब-कांशियस माइंड' पूरे विश्व में बहुत पढ़ी गयी; क्योंकि इस पुस्तक में लेखक ने उस शक्ति को मनुष्य के भीतर बताया है, जिसे सभी धर्मों में तलाशा जाता है. अपनी भिन्नता के कारण यह पुस्तक बहुत सराही गयी है.

'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पर नाज़ था' पंकज सुबीर का उपन्यास भी एक भिन्न संदेश देता है और एक ऐसा पैग़ाम ले कर आया है, जिसे पढ़ कर ही समझा जा सकता है।

101, Guymon Ct., Morrisville,
NC- 27560, USA
Phone : 07562405545
E-mail: sudhdrishti@gmail.com

एक नर्क से दूसरे नर्क की यात्रा

शशि कांडपाल

'बस्ती बहरानपुर': **रूपसिंह चंदेल**

प्रकाशन : १०९–ए, पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१.

मूल्य : ४५० रुपये.

भारत एक कृषि प्रधान और गांवों का देश है. गांवों के विकास-दर की कमी का बोझ अंततः शहरों पर पड़ता है. शहरों की भी अपनी सीमाएं हैं, सीमित साधन हैं और सभी के लिए ढंग के रहने योग्य जगहों की भी एक सीमा है. गांवों से शहरों में पहुंचे, छोटी-छोटी नौकरियों में लगे लोगों को रहने के लिए एक अदद घर तो चाहिए ही लेकिन बजट इतना नहीं कि बढ़ती महंगाई में अपने परिवार का पेट पालें या भारी भरकम किराया दें सो वे शहरों की सरकारी खाली पड़ी ज़मीन पर झोपड़ियां डाल कर कब्ज़ा कर लेते हैं. यदि सरकार को कब्ज़ा की गयी भूमि किसी भी कारण से उपयोगी लगने लगती है तो सरकार वहां के बाशिंदों को हटाने के लिए वैकल्पिक उपाय, सहायता निश्चित करती है. उन्हें सही जगह बसाने के नाम पर एक नर्क से उठाकर दूसरे में स्थांतरित कर दिया जाता है. इसमें भू-माफ़िया, स्थानीय राजनैतिक लाभार्थियों की बाक़ायदा सक्रिय भूमिका होती है. दिल्ली या अन्य मुख्य शहरों में ये काम न सिर्फ़ सुनियोजित तरीक़े से होता है बल्कि भारी संख्या में होता है. राजनीतिक पार्टियों के लिए झुग्गियों में रहने वाले केवल वोट बैंक होते हैं वहीं भू-माफ़ियों के लिए धन कमाने का साधन और इन भूमाफ़ियों में अधिकांश राजनीति से जुड़े हुए लोग ही होते हैं. जो लोग कहीं अधिकृत जगहों में ज़मीन ख़रीद कर मकान बनाने की स्थिति में नहीं होते वे अनाधिकृत जगहों का इस प्रकार इस्तेमाल करते हैं और एक दिन सरकार द्वारा अन्य जगह बसाये जाने पर मालिकाना हक़ मिलने की अपेक्षा करते हैं.

वरिष्ठ कथाकार रूपसिंह चंदेल का नवीनतम उपन्यास 'बस्ती बरहानपुर' ऐसी ही एक बस्ती की कहानी कहता है. उपन्यास बस्ती के इतिहास से प्रारंभ होकर उसके खाली स्थान पर नगर निगम द्वारा बनाये गये तीन मंज़िला फ़्लैट्स, उन फ़्लैट्स में अनाधिकृत जगहों से उठाकार लाये गये परिवारों को बसाने, मूलभूत सुविधाओं के अभाव, गंदगी, आपसी झगड़े, बस्ती के सामने कुछ दूर लोको वर्कशॉप से आने वाली कालिख की समस्याएं, क्षेत्र के ज़िम्मेदार लोगों का गैर ज़िम्मेदाराना रवैया, विकास के नाम पर मिलने वाली सरकारी राशि की बंदरबांट और वहां रहने वाले बाशिंदों के संघर्ष को समेटता हुआ यह उस दुनिया की आंतरिक दारुण स्थितियों की वास्तविकता से हमारा साक्षात करवाता है. मेरा मानना है कि जब कोई लेखक किसी विषय विशेष पर उपन्यास लिखने का निर्णय करता है तब निश्चित ही वह विषय उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण होता होगा. वह उस विषय पर महीनों... कई बार सालों चिंतन-मनन करता होगा, ताना-बाना बुनता होगा, 'टाक ऑफ़ द टाउन' बने इसको भी मद्देनज़र रखता होगा, विषय से संबंधित ज्वलंत समस्याओं का गहन अध्ययन करता होगा और तब जाकर वह 'बस्ती बरहानपुर' जैसा उपन्यास लिखता होगा. यहां मुझे महान कथाकार अमृतलाल नागर के उपन्यास – 'नाच्यो बहुत गोपाल' की याद आ रही है, जिसे लिखने के लिए वह

लंबे समय तक भंगी बस्ती में रहे थे. 'बस्ती बरहानपुर' को पढ़ते हुए यह अनुभूति होती रही कि उपन्यास निश्चित ही कानपुर की उस बस्ती के लेखक के गहन अध्ययन का ही प्रतिफलन है वर्ना जिस प्रकार सूक्ष्म विश्लेषण के साथ चीज़ें उभरकर पाठक के समक्ष उपस्थित हुई हैं वह बिना उन स्थितियों को निकट से जाने-पहचाने संभव नहीं था.

बस्ती बरहानपुर का जन्म एक अस्थायी बस्ती उजड़ने के फलस्वरूप होता है. सरकारी ज़मीन को लोगों द्वारा अधिकृत करने में नगर निगम अधिकारी अपनी जेबें भरते हैं, पुलिस भी सहयोगी बनती है और मेयर, पार्षद भी. सबकी मिलीभगत जब एक बड़ा रूप ले लेती है तब प्रशासन की नींद टूटती है. लेकिन चूंकि अनाधिकृत ज़मीन पर लोगों के बसने में नेताओं से लेकर अधिकारी और पुलिस प्रशासन की जेबें भरी हुई थीं इसलिए लंबे समय तक उस पर कार्यवाही नहीं की जाती. कई लोगों ने उस ज़मीन पर मकान बनाकर स्वयं रहने न जाकर किराएदारों को रखा और कइयों ने निगम अधिकारियों को पटा कर लंबे-चौड़े प्लॉट पर कब्ज़ा कर मकान बनाकर स्वयं रहने का सुख पाया हुआ था. लेकिन कभी-कभी ईमानदार अफ़सर जब आ जाते हैं तब ऐसी अनाधिकृत बस्तियों पर कार्यवाही होती है. और ऐसा ही हुआ. एक दिन शहर कलक्टर और कोतवाल के सख़्त आदेशों का पालन करना जब अवश्यंभावी हो गया तब सरकारी ज़मीनों पर बसी कॉलोनियों में अवैध रूप से बसे बाशिंदों को उजाड़ने और बसाने का काम शुरू हुआ. इस प्रकार 'बस्ती बरहानपुर' के ग्यारह ब्लॉक में बनाये गये निगम के तीन सौ छियानबे मकानों में अनधिकृत कॉलोनियों से परिवारों को उठाकर ला बसाया गया था. वास्तव में बस्ती बरहानपुर निगम के उन फ़्लैट्स से सटी बस्ती का नाम था, लेकिन जिस ज़मीन पर निगम ने वे फ़्लैट्स बनाये थे वे उस बस्ती की ज़मीन पर बने थे इसलिए निगम की बसी वह कॉलोनी भी 'बस्ती बरहानपुर' नाम से जानी गयी.

जहां बसाहट होगी वहां मानवीय कमजोरियां, आपसी मनमुटाव, रिश्ते, इंसानियत की पहचान, आपसी मेलजोल, एक दूसरे के दुख-सुख का अंदाज़ा और समस्याएं होंगी. समस्याएं तब और विकराल हो जाती हैं जब ऐसी कॉलोनियों को बसा तो दिया जाता है लेकिन सामान्य मूलभूत सुविधाओं तक को नजरंदाज़ कर दिया जाता है. उदाहरणार्थ पानी की आपूर्ति, खस्ताहाल सड़कें, कूड़े का निस्तारण, बरसात में बस्ती का नर्क में तब्दील हो जाना, समस्याओं की ओर से निगम पार्षद की निष्क्रियता और उदासीनता. ऐसी बस्तियों में नकारा,सामाजिक रूप से अवांछनीय लोगों की सक्रियता अधिक पायी जाती है. अपराध भी बढ़ते हैं और जीवन भी बदतर बनता है. पनवाड़ी जब स्मैक बेचने लगें, जुवारियों को पुलिस की शह मिलने लगे, शिकायत करने पर इलाक़े का दारोगा उल्टा आंखें दिखाये तो आम बस्ती वाले कहां जायें? इन सारी समस्याओं से घबरा कर कुछ समर्थ लोगों ने मज़बूर होकर बापूधाम नामक बस्ती में फ़्लैट लेने का फ़ैसला किया लेकिन उससे पहले उन लोगों ने पांच सालों तक अपनी वर्तमान स्थिति को ठीक बनाने के लिए भी संघर्ष किया.

'बस्ती बरहानपुर' एक पूरे समाज का आईना है जिसमें लोग बहुत कठिन जीवन बसर करते हैं. बस्ती के प्रस्तावित पार्क में कूड़े का ढेर लगना और उस कूड़े के ढेर का कागज़ों में पार्क बन जाना बहुत कचोटता है. किसी भी व्यवस्था में ईमानदारी का अभाव बहुत कुंठा उपजाता है. पार्क के नाम पर प्रस्तावित बजट का डकार जाना, कम सफ़ाई कर्मचारी रख ज़्यादा दिखाना और अधिकारियों द्वारा पैसा खा जाना आख़िरकार बस्ती पर ही भारी पड़ता है. कुछ जागरूक लोग जो बस्ती में व्यवस्था लाने को तत्पर थे उनमें सोमनाथ, भानुप्रताप सिंह,शंभुलाल शुक्ल, उपाध्याय, चौहान आदि प्रायः मीटिंग करते, पार्षद, मेयर और अधिकारियों से मिलते, जन सभाएं करते, बस्ती की आपराधिक शिकायतें पुलिस स्टेशन पर करने से दारोगा के बुरे बनते लेकिन फिर भी उनके प्रयास ज़ारी थे. अंततः एक दिन हारकर ये लोग ही बस्ती से पलायन करने का निर्णय करते हैं.

झोलाछाप डॉक्टर अब्दुल सत्तार हर ऐसी बस्ती में पाये जाते हैं. तारकनाथ श्रीवास्तव जैसे हैवान भी अपने पंजे अपने शिकार पर गड़ाए रखते हैं ताकि अपनी हवस पूरी कर सकें चाहे वो बच्ची उनकी अपनी बच्ची की उम्र की ही क्यों ना हो. बच्ची अभिलाषा का मुफ़्त ट्यूशन के लालच में बदनामी झेलते हुए आत्महत्या तक पहुंच जाना बेहद पीड़ाजनक है. बच्चियों के प्रति असावधानी बेहद ख़तरनाक हो सकती है, इसमें उसकी मां का लापरवाह होना या श्रीवास्तव जैसे व्यक्ति के प्रति अति विश्वास रखना एक होनहार को लील गया. तारकनाथ जैसे भेड़ के रूप में

भेड़िये हर जगह मौजूद हैं.

उपाध्याय की पत्नी का अपने पड़ोसी नंदकुमार के साथ भाग जाना यह बताता है कि यौन कुंठित सिर्फ़ पुरुष ही नहीं होते महिलाएं भी इससे पीड़ित हैं और इसके आगे समाज,गृहस्थी,सामाजिक प्रतिष्ठा सब नगण्य हो जाती हैं भले ही उसके परिणाम कितने ही बुरे क्यों न हों. सूर्य सिंह जैसे कई नौजवान कुछ पढ़ पायें या आगे उन्नति कर सकें इसलिए गांव से शहर लाये जाते हैं लेकिन शहर की चमक और बिगड़ैल स्वभाव उन्हें ग़लत रास्ता ही दिखाता है जिसके फलस्वरूप वे कहीं के नहीं रहते और दूसरों को भी मानसिक संताप देते हैं.

बस्ती में सामाजिक मूल्य भी ज़िंदा हैं जैसे सनाउल्ला खां का ग़ुस्से में अपनी पत्नी को तलाक़ दे देना लेकिन विगत तीन सालों से 'हलाला' जैसी घिनौनी प्रथा को गले ना उतार पाना और पत्नी का पूरा ख़्याल रखना. भानुप्रताप, वीरेंद्र सिंह चौहान, रमानाथ उपाध्याय का सोमनाथ को अपना बड़ा मान बस्ती की ख़ुशहाली के लिए सरकारी महकमों में निस्वार्थ चक्कर लगाना, बस्ती के लोगों को भलाई के लिए समझाना, उनकी जागरूकता को प्रकट करता है. श्याम सिंह गहलोत एक अच्छा आदमी नहीं है. लेकिन बस्तीवालों की सहायता के लिए वह तत्पर हो उठता है. उसके राजनीतिक संपर्कों का लाभ बस्तीवालों को तब मिलता है जब एस. एच. ओ. शुक्ला बस्ती के लोगों को प्रताड़ित करने का प्रयास करता है.

उपन्यास देश और बस्ती की वास्तविक स्थितियों का गंभीर दस्तावेज़ है. एक बस्ती का बस जाना आसान है लेकिन उस बस्ती को एक पाठक के मस्तिष्क में बिठा पाना बेहद मुश्किल काम है लेकिन लेखक इसमें पूर्णरूप से सफल रहे हैं. आरंभ से अंत तक पाठक कथा से बंधा रहता और साथ-साथ संघर्ष करता चलता है. निम्न और मध्यम वर्ग की कॉलोनी होते हुए भी घटनाएं हर वर्ग की लगती हैं. घनी बस्तियों में तो तब भी लोग एक दूसरे की खोज ख़बर रखते हैं वरना आजकल सब अकेले हैं. रूपसिंह चंदेल के लेखक की सबसे बड़ी ख़ूबी उनकी क़िस्सागोई शैली और भाषा की सहजता है.

एक पाठक के व्यक्तिगत नजरिए से मुझे लगता है कि तीन सौ छियानवे परिवार सरकारी सिस्टम के मकड़ जाल से नहीं लड़ पाये. जिनके पास पैसा था उन्होंने दूसरे ज़रूरतमंदों को ये फ़्लैट बेचकर अपने लिए बापूधाम या अन्य ठीक-ठाक जगह रहने का इंतज़ाम कर लिया और जो इतने समर्थ नहीं थे वे वहीं रह गये बस्ती की स्थितियों से जूझते हुए. शायद यह संघर्ष हर उस बस्ती का है जिसका नाम बरहानपुर या कुछ और भी हो...

लेखक इतने गंभीर विषय को तमाम अन्य विषयों के साथ एक उपन्यास में ढालने के लिए बधाई के पात्र हैं. उनकी दृष्टि सिर्फ़ चंद परेशानियों पर ही नहीं बल्कि वहां रहने वाले लोगों की व्यक्तिगत परेशानियों के साथ सामाजिक, नैतिक दृष्टिकोण पर भी रही है. उपन्यास एक चलचित्र-सा है जिसमें किसी कला-फ़िल्म को पढ़ने-सा एहसास होता है. लेखक विभिन्न स्थितियों को बेनकाब करने और पाठक को हद दर्जे तक परिस्थितियों का एहसास कराने में सफल रहें हैं. अपने विषयों, लेखन, स्पष्टवादिता को लेकर लेखक ने जो मापदंड बनाये हैं उससे पाठकों को कुछ नया पढ़ने का एहसास होता है. अंत में केवल इतना ही कि रूपसिंह चंदेल की औपन्यासिक दुनिया में 'बस्ती बरहानपुर' एक और मील का पत्थर है यह मेरा विश्वास है.

१४/१००५, इंदिरानगर,
लखनऊ- २२६०१६ (उ. प्र.)
मो.नं.९८३९६८५४४१

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

पृष्ठ ६ से आगे...

(लेटर बॉक्स)
एक जरा अलग प्रतिक्रिया...

डॉ. उमेशकुमार सिंह के ये दो वाक्य कहानी का पूरा घटनाचक्र बयान करते हैं : 'महाराज, मैं कोई नयी बात नहीं कर रहा हूं, हमारे कुल में कन्याओं की हत्या जन्म लेते ही करने की रही है. फिर यह तो राजहित में दिया गया बलिदान है.' आ...ह! कितना सहज ज़हर का बलिदानी प्याला!!

डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी की 'सुंदरवन की अनूठी कथा', हर माने में विलक्षण है. एक ग़रीब सिराजुल की बेबसी उसके सभी गुणों, मानवीय मूल्यों और भावनाओं को दबोच लेती है. उसे तो वही करना है जो सरमायादारों के दलालों की बंदूक करवाये. इस भयादोहन का साम्राज्य एक ग़रीब और जंगली प्राणी दोनों की जान पर बन आया है. कहानी के आरंभ से ही बहुत प्रभावशाली 'सस्पेंस'! ठेठ आंचलिक शब्दों का भी बेहतरीन ढंग से अनुवाद और कहानी का चरम बिंदु; वह भी मात्र तीन शब्दों में : 'सिराजुल समझ गया...' मानो सारी व्यवस्था चरमरा कर वहीं ढेर हो गयी हो!

इन्हीं डॉ. साहब और उनकी आत्मरचना के 'आमने-सामने' जब हम पाठक हुए तो बस्स, हमारे लोचन लेखक पर ही टिके रहे और लेखक अपने लक्ष्य पर! कोई अपने ही बारे में चुटकी बजाते हुए इस कदर रुचिकर, हास्य प्रधान बेबाक व्यंग्य, वह भी उद्धरण के साथ कैसे लिख सकता है!? 'अरविंद' जी, आप हम पाठकों का ध्यान रखते हुए यों ही 'फोनियाते' रहिए. निश्चित है, मुझ जैसे कइयों के फोल्डर में मिलेंगे ये पृष्ठ; और यदि इस अंक की प्रतियां ग़ायब होने लगें तो उसे चोरी नहीं, पाठकों के सेवार्थ मां सरस्वती का वरदान समझिएगा, समझे!! अशोक 'अंजुम' जी ने भी तो अपनी ग़ज़ल के अंतिम शेर में कुछ इसी तरफ़ इशारा किया है:

'जो मेरी जेब से फिसला था इक दिन,
सियासत में वो सिक्का चल रहा है.'

क्या ग़ज़ल लिखी है! मेरी मानिए और संजो लीजिए इसे भी. लघुकथाओं की बात करें तो हमारे आसपास ख़बरों के रूप में जो घटा है या घटता है वही इन कथाओं का विषय होता है! आनंद बिल्थरे गांवों में शौचालयों की बदहाली के लिए वहां के वासियों की बदनीयत पर नज़र डालते हैं तो डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा ऑटो चालक की ईमानदारी पर. तिरंगे में लिपटे शहीद के अबोध बालक को उसके पिता की तस्वीर से ढाढ़स बंधाने की बात सेवा सदन प्रसाद करते हैं तो आनंद तिवारी पारंपरिक गांवों की दुख भरी गाथा को कविता के जरिए व्यक्त करते हैं : 'सुकून को तलाशते बबूल वाले गांव.'

डॉ. राजम पिल्लै जी को मैं सदा इत्मीनान से पढ़ती हूं, 'औरतनामा' है न! इस स्तंभ की किरदार हैं 'सुप्रभात स्तोत्र' की प्राणदायिनी 'भारतरत्न' एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी जी. 'देवदासी' परिवार में जन्मी, रूप और गायन-वादन की खजानची, सुनिश्चित भविष्य की मल्लिका थीं वे. उनके जीवन को समझने के लिए लेखिका ने देवदासी प्रथा को पूर्णरूपेण इंगित किया है. तब ही समझ आता है यह 'मूल वाक्य' ...'देवदासी परिवार में जन्म लेने की वजह से मिला वज्रशलाकाओं से निर्मित कारागार में आजन्म आवास का दंड-अभिशाप!' परंतु फिर भी 'एम. एस. सुब्बु' 'मद्रास' के 'एलीट' दायरों में एक प्रतिमान, दैदीप्यमान! यही है व्यक्तित्व की विलक्षणता. 'पुस्तक समीक्षा' के अंतर्गत एक उपन्यास और एक कहानी संग्रह. नीतू सुदीप्ति 'नित्या' के 'छंटते हुए चावल' की चौदह कहानियों में प्रत्येक का मूल विषय और लेखिका की आत्मरचना राजीव पुंडीर जी ने साझा की है.

समसामयिक विषय, रोचक विषयवस्तु, भाषा-शैली व पात्रों की सजीवता, स्थान और समय की सीमा रेखाओं को स्वीकारते हालात, विपरीत परिस्थितियों में गिरती-पड़ती-संभलती व मन-बुद्धि के अंतर्द्वंद्व से समझौता करती मानसिकता और कथा में निहित लेखिका का मूल्यपरक-यथार्थवादी दृष्टिकोण! मैं बात कर रही हूं डॉ.सूर्यबाला जी के विविध आयामी व लोकप्रिय छठे उपन्यास 'कौन देस को वासी: वेणु की डायरी' की. विस्तारपूर्वक समीक्षा की है डॉ. रमाकांत शर्मा जी ने इस चार सौ पृष्ठ से अधिक के डायरीनुमा उपन्यास की और यह होनी भी चाहिए. मसला पृष्ठों का नहीं मसौदे का है, कथ्य का है. हर वासी-प्रवासी को छूता हुआ; समाज और समाज में जीवन या जीवन और जीवन में समाज की व्यवस्था की व्याख्या करता हुआ! परिवार में रहते हुए परिवार के सपने और रिश्तों की क़ीमत या कभी न शांत होनेवाली मृगतृष्णा-सी भौतिकवादी दौड़! जो मांगोगे वही मिलेगा इस विस्तृत और व्यापक कथा में.

- सविता मनचंदा
पी.२/८३, ज़रीना पार्क, अणुशक्तिनगर गेट के सामने, मानखुर्द, मुंबई-४०००८८.
मो. : ९९६९४८३०२५

हवाई-द्वीप यात्रा की कुछ झलकियां

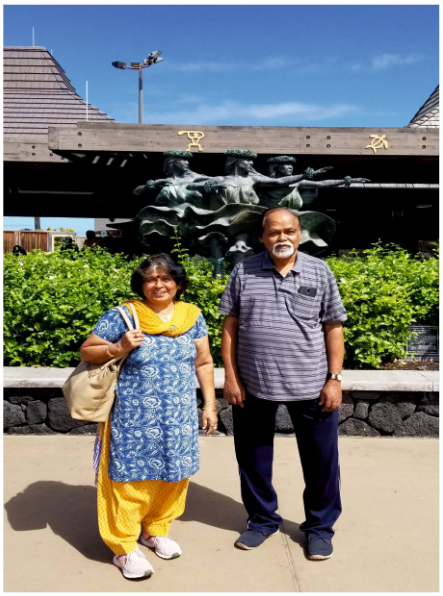

कोना हवाई अड्डा (बिग आइलैंड)

टोटम पोल्स

किलौया ज्वालामुखी
से निकलता लावा

ब्लैक बीच पर
लहरों का खेल

Tenughat Vidyut Nigam Limited

(A Govt of Jharkhand undertaking)
Hinoo , Doranda , Ranchi 834002,Fax0651-2501015,2253181

TVNL AT A GLANCE

- Tenughat Vidyut Nigam Limited (a Govt. of Jharkhand Undertaking) is a power generation company incorporated under India Company's Act 1956.
- TVNL Head Quarter is at Ranchi and the project known as Tenughat Thermal Power station (TTPS) is Located at Village Lalpania in Bokaro District.
- The total installed capacity of TTPS is 420 MW (2x210). The first unit was put under commercial operation in September 1996 and second in September,1997.
- TTPS has an acquired land of 1800 acres (approx.) there is ongoing process for setting up of 2x660 MW super critical units as expansion project within the same boundary.
- TVNL has achieved several milestones in electricity generation under state sector since its inception.

(Achievement during last few years)

- Allocation of the Coal Block Rajbar E&D for TVNL.
- State Cabinet has accorded approval for installation of TTPS expansion project of 2x660 MW super critical units at TTPS, Lalpania.
- Rail transportation of coal to TTPS has been successfully operationalised since Oct'2015.
- SAP ERP system introduced w.e.f 01.04.2016 for transparent operations.

Our mission

To full fill the requirement of electrical energy of Jharkhand

Our Vision

To be among the best 25 Thermal power plant in India

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना DENA

सिर्फ़ ब्याज की नहीं, अधिक ब्याज की सोचें !

बड़ौदा एडवांटेज सावधि जमा

पर पाएं अधिक लाभ

जमा राशि न्यूनतम रु.15.01 लाख

वरिष्ठ नागरिकों के लिए अतिरिक्त ब्याज

ऋण/ओवरड्राफ्ट सुविधा उपलब्ध

*शर्तें लागू.

टोल फ्री नंबर पर कॉल करें (24x7)
बैंक ऑफ़ बड़ौदा 1800 258 44 55 / 1800 102 44 55
पूर्ववर्ती विजया बैंक 1800 425 5885 / 1800 425 9992
पूर्ववर्ती देना बैंक 1800 233 6427 / 022-6224 2424

www.bankofbaroda.in

हमें फ़ॉलो करें

संपर्क सूत्र : ए-१०, बसेरा, ऑफ़ धिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071. फोन : 25515541